अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-41, अंक-09, 16-31 दिसंबर, 2017

किसान आंदोलन पर विशेष

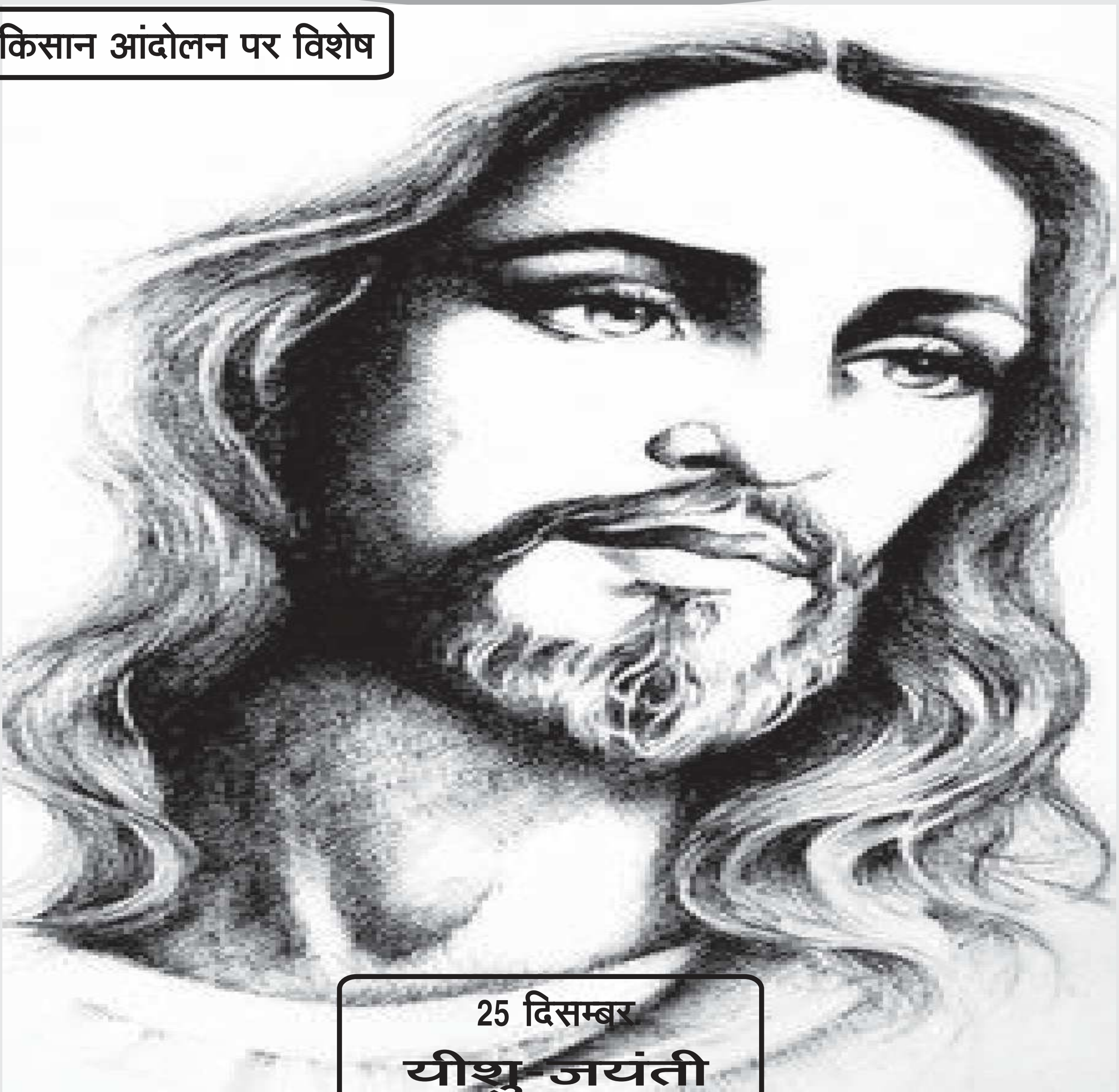

25 दिसम्बर

यीशु-जयंती

शत्रुओं से प्रेम करो

"तुमने सुना है कि कहा गया था, 'अपने पड़ोसी से प्रेम करना और शत्रु से द्वेष रखना,' किन्तु मैं तुमसे कहता हूं अपने शत्रुओं से प्रेम करो और सताने वालों के लिए प्रार्थना करो, जिससे तुम अपने पिता की, जो स्वर्ग में है, संतोष बन सको, क्योंकि वह दुर्जन और सज्जन दोनों पर अपना सूर्य उदय करता है, तथा धार्मिक और अधार्मिक दोनों पर वर्षा करता है। यदि तुम केवल उन्हीं से प्रेम करो जो तुमसे प्रेम करते हैं तो तुम्हें क्या फल मिलेगा?"

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 41, अंक : 09, 16-31 दिसम्बर, 2017

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
संपादक
अशोक मोती
फोन : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. लोकतंत्र व लोकसत्ता... 2
2. अहिंसा की ताकत... 3
3. जमीन पैसे की नहीं प्राण की चीज... 5
4. किसान व भूख की बात करना... 7
5. 'लोहा' बनाम 'गेहूं' की दुनिया... 8
6. भारत की कृषि : समस्या व समाधान... 10
7. महिला किसानी (1)... 13
8. महिला किसानी (2)... 14
9. परमेश्वर का प्रेम... 15
10. श्रद्धांजलि : 'साथी पंचदेव' 17
11. उपन्यास - 'बा'... 18
12. गुजरात की जागृति... 19
13. कविताएं... 20

प्रधान संपादक की कलम से...

लोकतंत्र व लोकसत्ता

यांत्रिक व्यक्ति, लोकतंत्र व लोकसत्ता— वर्तमान सभ्यता को गांधीजी ने इसलिए चुनौती दी थी क्योंकि इसमें नैतिक विकास की संभावनाएं कम से कमतर होती गयीं। आधुनिक युग ने व्यक्ति को एक ओर चेतना के उच्च से उच्चतर यात्रा को अपने विमर्श से बाहर कर दिया तथा दूसरी ओर आंतरिक जगत (चेतना जगत) तथा बाह्य जगत (मुख्यतः पदार्थ जगत) के बीच किसी भी प्रकार की एकता को विकास एवं लोक के पैमाना के बाहर कर दिया।

वर्तमान सभ्यता का नियामक आधार शुद्ध भौतिकवाद है। जितना ही हम शुद्ध पदार्थ की ओर जाते हैं, उतना ही हम चेतना के निम्नतर स्तर की ओर जाते हैं। चेतना से च्युत होने की प्रक्रिया व्यक्तियों को निम्नतम एकरूप चेतना के स्तर पर ला देती है। फलस्वरूप एक ऐसी एकरूपता विकसित है जिसमें व्यक्तियों के बीच का गुणात्मक फर्क खत्म हो जाता है। व्यक्ति अपनी गुणात्मक विशेषताओं से कट कर महज एक इकाई में परिवर्तित होता जाता है।

पूंजीवाद एवं औद्योगिक सभ्यता ने व्यक्ति को उसकी अंतरात्मा की गुणात्मक विशेषता से काट कर उसे मशीन/व्यवस्था/श्रेणीबद्धता में संयोजित करने व उसके अनुकूल बनाने वाला कौशल सीखने की ओर बढ़ाया है। इस प्रक्रिया में मनुष्य अपनी गुणात्मक विशेषता से कट कर महज एक श्रम इकाई में परिवर्तित होता जाता है और यांत्रिक ढंग से काम करता जाता है, एक यांत्रिक व्यक्ति में तब्दील हो जाता है। इस प्रकार पूंजीवाद में श्रम करने वाला समूह ऐसे समाज का निर्माण करता है जो यांत्रिक व्यक्तियों का समुच्चय समूह मात्र बनकर रह जाता है।

श्रम इकाई मानवीय विशेष्टता व मानवीय गुण से च्युत होकर, परिचय विहीन हो जाती है। इस परिचय विहीनता के दो परिणाम होते हैं। एक श्रम का मानवीय गुण से विलगाव (Alienation) दूसरे एकरूपता (Uniformity), अर्थात यंत्रवत् काम करने वाले श्रम (body without soul) की इकाईयों का कई गुना बढ़ जाना। अंतरात्मा प्रेरित मनुष्यों का विकास इसमें रुक जाता है और समाज में नैतिकता का उच्च से उच्चतर स्तर पर जाने की संभावना भी खत्म होने लगती है।

इस प्रकार वर्तमान लोकतंत्र, जो पूंजीवाद की बुनियाद पर खड़ा है, जीवंत सामुदायिकता के बजाय यांत्रिक इकाईयों के समुच्चय के आधार पर संचालित हेता है। सच्चे लोकतंत्र को लाने के लिए, इसे अंतरात्मा प्रेरित मनुष्य के समुदाय के आधार पर खड़ा करना होगा। जीवन में श्रम का कार्य आनंद का संचार करने वाला हो और उत्पादन श्रम में श्रमिक की गुणात्मक विशेषता तथा आत्मिक गुण प्रकट होने चाहिए। यह श्रम-कला द्वारा ही संभव है। मशीन नहीं बल्कि श्रम-कला के उपकरणों का विकास करना होगा, उनका अविष्कार करना होगा। ऐसे श्रम-कला वाले श्रमिकों का समुदाय प्रकृति के साथ सहजीवी संबंध व परस्पर उच्च-मानवीय चेतना के आधार पर संबंध रखने वाला होगा। और, तब शरीर श्रम व बौद्धिक श्रम का भेद भी मिट जायेगा।

लोकतंत्र केई ढांचा नहीं है। लोकतंत्र, लोक की संप्रभुता प्रकट करने की एक प्रक्रिया है। जितना ही हम लोक की संप्रभुता को प्रकट करने की दिशा में बढ़ते हैं, उतना ही हम लोकतांत्रिक होते जाते हैं। राष्ट्र-राज्य के उदय के बाद, राष्ट्र निर्माण लोकतंत्र का मुख्य लक्ष्य हो गया है। राष्ट्र का निर्माण लोक के जुड़ाव (स्वाभाविक सदस्य होने की भावना) पर आधारित होता है। अर्थात यह समुदाय का सदस्य होने की भावना का विस्तार है। जबकि राज्य हिंसा शक्ति व दंडशक्ति पर टिके थे, टिके हैं। आज राष्ट्रीयता लोक की तथा राज्य दंडशक्ति के प्रतिनिधि बने हुए हैं।

जैसे-जैसे राज्य अपने को राष्ट्र में विलीन करता जायेगा, लोकसत्ता का आधार मजबूत होता जायेगा। राष्ट्र की सदस्यता, समुदाय का सदस्य होने की भावना का ही विस्तार है, इस कारण लोकसत्ता की संप्रभुता का आधार लोक समुदाय के केन्द्र में आने से ही बनेगा। और इसका विस्तार राष्ट्र तक फैलते जाने से होगा। इसलिए सच्चे लोकतंत्र की स्थापना तभी होगी जब लोक समुदाय को मजबूत करने के तंत्र विकसित हों तथा लोकतंत्र के मूल्य लोकसमुदाय में रच-बस जायें। जब ये समुदाय स्वतंत्रता, समता, श्रम की गरिमा एवं लोकतंत्र के मूल्यों को धारण करेंगे, उन्हें जियेंगे तो इसके फलस्वरूप राष्ट्र स्तर तक स्वतंत्रता, समता एवं लोकतंत्र के मूल्यों का विस्तार होगा।

बिमल कुमार

अहिंसा की ताकत

❑ महात्मा गांधी

लेकिन बहुत प्रयत्न के बावजूद यदि धनिक लोग सच्चे संरक्षक न बनें और अहिंसा के नाम पर भूखों मर रहे करोड़ों लोग अधिकाधिक कुचले जायें, तो क्या किया जाये? इस पहेली का हल खोजने में ही अहिंसात्मक असहयोग और अहिंसक अवज्ञा के साधन हाथ लगे हैं। कोई भी धनिक, गरीबों के सहयोग के बिना धन नहीं कमा सकता। मनुष्य को अपनी हिंसक शक्ति का सहयोग का भान है, क्योंकि वह तो उसे लाखों वर्ष पूर्व विरासत में मिली थी। चार पांव की जगह जब वह दो पांव और दो हाथ का प्राणी हुआ, तभी उसमें अहिंसा की शक्ति भी आयी। हिंसा की शक्ति का तो उसे आरंभ से ही भान था, लेकिन अहिंसा का भान उसमें धीमे-धीमे किन्तु निश्चयपूर्वक रोज बढ़ने लगा। यह भान गरीबों में फैले, तो वे बलशाली बनें, और जो आर्थिक असमानता वे भोग रहे हैं, उसे अहिंसा के मार्ग से मिटाना सीखें।

इसलिए जो बात मैं बार-बार कहता रहा हूं उसी को फिर दुहराता हूं। दृढ़ निश्चय के साथ रचनात्मक कार्यक्रम चलाना ही अहिंसात्मक कार्रवाई की सबसे अच्छी तैयारी और अभिव्यक्ति है। जो भी कोई यह मानता है कि रचनात्मक कार्यक्रम के आधार के बिना भी वह परीक्षा के समय अहिंसक बल दिखा सकेगा, वह बुरी तरह नाकामयाब होगा। यह तो वैसी ही बात होगी कि कोई बिलकुल निहत्था और भूख का मारा आदमी, किसी अच्छी तरह खाये-पीये हुए और हथियारों से लैस सिपाही का सामना अपनी शारीरिक शक्ति से करने की कोशिश करे। उसकी हार तो निश्चित ही है। मेरी राय में जिस रचनात्मक कार्यक्रम में विश्वास नहीं है, उसमें भूख से पीड़ित करोड़ों देशवासियों के प्रति कोई ठोस भावना नहीं है; और जिसमें यह भावना नहीं, वह अहिंसक लड़ाई नहीं लड़ सकता। व्यावहारिक जीवन में मैंने यह पाया है कि ज्यों-ज्यों मैं भूखे लोगों के साथ तद्रूप होता गया, त्यों-त्यों मेरी अहिंसा का विस्तार होता गया। अपनी कल्पना की अहिंसा से अब भी मैं दूर हूं, क्योंकि मूक जनसाधारण के साथ तन्मय होने की अपनी कल्पना से मैं अभी बहुत दूर नहीं हूं क्या?

मैं देश को अपना हम-खयाल बना सकूं तो भावी समाज-व्यवस्था मुख्यतः चरखे पर और चरखे का जो भी आशय है, उस पर आधारित होगी। इसमें वह सब कुछ होगा जिससे देहात के लोगों की भलाई होती हो। उद्योग वर्जित नहीं होंगे, बशर्ते कि वे गांवों और गांवों के जीवन का दम न घोटें। मैं बिजली, जहाज-निर्माण, लोहा-उद्योग, मशीन-निर्माण आदि उद्योग के गांव की दस्तकारियों के साथ-साथ बने रहने की कल्पना करता ही हूं। परंतु उनमें निर्भरता का क्रम बदल जायेगा। अब तक औद्योगीकरण की योजनाएं इस ढंग से बनायी गयी हैं जिससे कि गांवों और गांव की दस्तकारियों की बरबादी होती है। भावी शासन-व्यवस्था में औद्योगीकरण गांवों और दस्तकारियों की उन्नति में सहायक होगा। मैं समाजवादियों के इस विचार से सहमत नहीं हूं कि जिन्दगी की जरूरतों के केन्द्रीकरण से आम लोगों का भला होगा, बशर्ते कि केन्द्रीकृत उद्योगों की योजना सरकार बनाये और वही उनकी मालिक भी हो। पश्चिम की समाजवादी धारणा ऐसे वातावरण में उपजी थी जो हिंसा की दुर्गंध से भरा था। पश्चिम और पूर्व की समाजवादी धारणाओं का उद्देश्य एक ही है—अर्थात सारे समाज की अधिक-से-अधिक भलाई और लाखों-करोड़ों लोगों को निर्धन और गिने-चुने लोगों को धनी बनाने वाली घोर विषमताओं का अंत! मैं समझता हूं कि यह उद्देश्य तभी पूरा किया जा सकता है जब दुनिया के मनीषी अहिंसा को न्यायोचित समाज-व्यवस्था की स्थापना का आधार मान लें। मेरा विचार है कि हिंसा द्वारा श्रमिकों का सत्ता पर अधिकार अंत में नाकाम होकर रहेगा। हिंसा से जो चीज प्राप्त की जाती है उसे उग्रतर हिंसा छीन लेती है। जो लोग जन-साधारण की भावनाओं को उभारते हैं, वे उन्हें और राष्ट्रीय उद्देश्य को हानि पहुंचाते हैं। यह कहना कि उनका मंशा अच्छा होता है, बेमानी बात है।

मैं अपनी बात जरा खोलकर कहता हूं। अहिंसा के विषय में अपने प्रयोगों से मुझे पता चला है कि व्यावहारिक अहिंसा का मतलब है सबके साथ मिलकर शारीरिक श्रम करना। रूसी दार्शनिक बोन्डोरेफ ने इसे जीविकाश्रम का नाम दिया है। इसका मतलब है आत्यंतिक सहयोग! दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रही सार्वजनिक लाभ के लिए और सार्वजनिक कोष के लिए श्रम करते थे तथा अपने-आपको पक्षियों की भांति स्वतंत्र अनुभव करते थे। उनमें हिन्दू, मुसलमान (शिया और सुन्नी), ईसाई (प्रोटेस्टेंट और रोमन कॅथलिक), पारसी, यहूदी सब थे। उनमें अंग्रेज और जर्मन भी थे। जहां तक पेशे का संबंध है वे वकील, वास्तुविद्, इंजीनियर, बिजली का काम करने वाले, मुद्रक और व्यापारी थे। सत्य और अहिंसा के आचरण से धार्मिक भेदभाव मिट गये और हम हर धर्म की खूबियों को समझने लग गये। दक्षिण अफ्रीका में मैंने जो दो बस्तियां बसायीं उनमें एक भी धार्मिक झगड़ा हुआ हो, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। मिलकर किये जाने वाले श्रम-कार्य थे छपाई, बढ़ईगिरी, मोचीगिरी, बागवानी, इमारत बनाना इत्यादि। हमारा श्रम कोई हमें पीसने वाला काम नहीं था बल्कि वह तो एक आनंद था। शाम के

समय साहित्य चर्चा होती थी। स्त्री-पुरुष और बच्चे सत्याग्रह सेना के अग्रणी थे। उनसे ज्यादा बाहदुर वफादार साथियों की मुझे चाह ही नहीं हो सकती थी। भारत में दक्षिण अफ्रीका वाला तजुर्बा जारी रखा गया और मेरा खयाल है कि उसमें सुधार भी हुआ। सब मानते हैं कि अहमदाबाद के मजदूर भारत भर में सबसे अधिक अच्छी तरह संगठित मजदूर हैं। यदि वे उसी ढंग से काम करते रहे जिस ढंग से उन्होंने शुरू किया है तो आखिरकार कारखानों के मौजूदा मालिकों के साथ-साथ, उन्हें भी उन कारखानों की मालिकी में हिस्सा मिल जायेगा। यदि यह स्वाभाविक परिणाम न निकला, तो मानना पड़ेगा कि उनकी अहिंसा में कुछ त्रुटियां रह गयी होंगी।

सत्य और अहिंसा के विषय में चौंतीस साल के सतत अनुभव और प्रयोग ने मुझे कायल कर दिया है कि अहिंसा तभी तक निभ सकती है जब वह सजग शारीरिक श्रम से संबद्ध हो और अपने पड़ोसियों के साथ हमारे रोजाना व्यवहार में व्यक्त हो। यह है रचनात्मक कार्यक्रम! यह साध्य नहीं है, बल्कि एक अपरिहार्य साधन है और इसलिए साध्य का लगभग पर्यायवाचक है। अहिंसात्मक प्रतिरोध की शक्ति केवल रचनात्मक कार्यक्रम पर ईमानदारी से अमल करने से ही प्राप्त हो सकती है।

दुनिया के इतिहास में पहली बार अहिंसा व्यक्तियों, धर्मानुरागियों और रहस्यवादियों के दायरे से निकालकर, राजनीतिक क्षेत्र में लायी गयी है और एक बड़े जनसमूह ने उसको आजमाया है। जरा सोचिए तो कि कुछ थोड़े-से या लाख-दस लाख हिन्दुस्तानियों के बजाय अगर पूरे चालीस करोड़ हिन्दुस्तानी अहिंसक हों तो क्या उन चालीस-के-चालीस करोड़ लोगों को कत्ल करने का निश्चय किये बिना जापानी हिन्दुस्तान में एक कदम भी आगे बढ़ सकते हैं!

* *यानी अगर हिन्दुस्तान में चालीस करोड़ गांधी हों तो?*

बस, अब हम मुद्दे की बात पर आये। इसका मतलब यह है कि अभी हिन्दुस्तान पर्याप्त रूप से अहिंसक नहीं है। अगर हम सभी अहिंसक होते तो यहां न तो इतने दल होते और न जापानी आक्रमण ही होता! मैं जानता हूं कि हमारी अहिंसा संख्या और गुण दोनों की दृष्टि से मर्यादित है। लेकिन इन दोनों मर्यादाओं के रहते हुए भी उसने देश की जनता पर जबरदस्त असर डाला है और उसमें एक ऐसी जान फूंक दी है जो पहले नहीं थी। 6 अप्रैल, 1919 को देश में जो जागृति देखी गयी, वह हर एक हिन्दुस्तानी को दंग कर देने वाली थी। उस समय हिन्दुस्तान के कोने-कोने से, जहां पहले कभी कोई सार्वजनिक कार्यकर्ता पहुंचा तक न था, हमें जो उत्साहपूर्ण जवाब मिला, उसका आज मैं कोई कारण नहीं दे सकता। उस वक्त तक न तो हम जनता के बीच गये थे और न हम यही जानते थे कि हम उसके पास पहुंच सकते हैं और उससे बातचीत कर सकते हैं।

* *मजदूरों, किसानों और कारखानों के श्रमिकों को लाभ पहुंचाकर क्या आप यादवी—आपस में युद्ध को—रोक सकते हैं?*

हां, यह मैं निश्चय ही रोक सकता हूं, बशर्ते कि लोग अहिंसक पद्धति अपनायें। यह बात बहुत स्पष्ट हो गयी है कि नीति या युक्ति के तौर पर भी अहिंसा को अपनाने में कितनी शक्ति है। जब लोग उसे सदाचार के सिद्धांत के रूप में स्वीकार करते हैं, तो पारस्परिक युद्ध असंभव हो जाते हैं। इसका प्रयोग अहमदाबाद में हो रहा है। अब तक उसके फल बहुत संतोषजनक रहे हैं और बहुत संभव है कि वे निर्णायक रूप से प्रभावशाली भी सिद्ध हों। अहिंसक पद्धति पूंजीपति का नाश नहीं चाहती, पूंजीवाद का नाश चाहती है। हम पूंजीपति से कहते हैं कि वह अपने को उन लोगों का संरक्षक समझे जिन पर वह अपनी पूंजी के निर्माण, स्थिति और वृद्धि के लिए आश्रित है। यह भी आवश्यक नहीं है कि मजदूर पूंजीपति के हृदय-परिवर्तन तक ठहरे। अगर पूंजी एक शक्ति है, तो श्रम भी शक्ति है। दोनों का प्रयोग विनाश और सृजन के लिए किया जा सकता है। दोनों एक-दूसरे पर आश्रित हैं। जैसे ही मजदूर को अपनी शक्ति का पता चलेगा, वह पूंजीपति का गुलाम न रहकर, उसका भागीदार बन जायेगा। यदि वह स्वयं सर्वेसर्वा बनने की आकांक्षा रखता है, तो बहुत संभव है कि वह उस मुर्गी को हलाल कर डाले, जो सोने के अंडे देती है।

बुद्धि की और अवसर की असमानता तो अंत तक बनी ही रहेगी। नदी के किनारे रहने वाले आदमी को किसी भी दशा में उस आदमी की अपेक्षा खेती करने से अधिक अवसर प्राप्त हैं, जो घोर मरुभूमि में रहता है। पर जहां असमानताएं हमारे सामने मुंह बाये खड़ी हों, वहां हमें मुख्य समानता को भी नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। जिस तरह पशु-पक्षियों को जीवन निर्वाह के योग्य प्राप्त होता है, मनुष्यों को (कम-से-कम) उतना ही अधिकार तो है ही। फिर अधिकार के साथ उसके कर्तव्य लगे रहते हैं, और अधिकारों को छीनने के प्रयत्न का निराकरण भी। इसलिए सवाल केवल उन कर्तव्यों और उपायों को खोज निकालने का है, जिनसे मूलभूत समानता की रक्षा हो सके। अपने शरीर से कुछ-न-कुछ परिश्रम करना हमारा कर्तव्य है, और जो हमें हमारे श्रम के फल से वंचित रखता है, उसके साथ असहयोग करना, उक्त उपाय है। अतएव यदि मैं पूंजीपति और मजदूर की मूलभूत समानता को कबूल करता हूं, और मुझे यह कबूल करना भी चाहिए, तो मेरा लक्ष्य पूंजीपति का नाश नहीं हो सकता। मुझे तो उसके हृदय-परिवर्तन का प्रयत्न करना चाहिए। उसके साथ मेरा असहयोग अपनी गलतियों के प्रति उसकी आंखें खोल देगा। मुझे इस बात का भय नहीं होना चाहिए कि मेरे असहयोग के फलस्वरूप कहीं कोई दूसरा मेरा स्थान न ले ले। मैं तो अपने साथियों को भी इस प्रकार प्रभावित करने की आशा रखता हूं कि वे पूंजीपति के पाप में उसकी मदद न करें। इसमें शक नहीं कि मजदूरों को इस प्रकार सुशिक्षित बनाने की क्रिया एक धीमी क्रिया है, पर इस उपाय के रामबाण होने के कारण निश्चित रूप से यह सबसे तीव्र गतिशील किया भी है।

...क्रमशः अगले अंक में

23 दिसंबर : किसान दिवस

जमीन पैसे की नहीं, प्राण की चीज

❑ विनोबा

भारत बहुत बड़ा देश है। इसमें 36 करोड़ से भी ज्यादा लोग रहते हैं। इसमें से छठा हिस्सा शहरों में रहता है। वह खेती नहीं करता और न वह कर सकता है। गांवों में जो कारीगर वर्ग है, वह भी खेती नहीं कर सकता है, क्योंकि उसे गांव वालों के काम करने पड़ते हैं। आज कुल देश को अनाज दिलाने का काम किसानों और कृषक-मजदूरों का है, बाकी सभी लोग अनाज खरीदेंगे। अनाज ऐसी वस्तु है कि उसके बिना किसी का नहीं चलता है। वह ऐसी चीज है, जो सबको मिलनी चाहिए। इसलिए वह महंगी भी नहीं बिक सकती। वास्तव में 'अनाज की कीमत', यह कल्पना ही छोड़ देनी चाहिए। जैसे हवा, पानी सबको मुफ्त में मिलते हैं, वैसे ही अनाज भी बिना दाम मिलना चाहिए। अगर वह मुफ्त न हो सके, तो उसका कम-से-कम दाम होना चाहिए, जो मुफ्त जैसा ही मालूम हो। लेकिन अगर अनाज का बहुत कम दाम मिलता है तो किसानों को तकलीफ होती है। इसलिए महंगा भी नहीं और सस्ता भी नहीं, ऐसा बीच का रास्ता निकालना चाहिए। प्रस्तुत लेखक पूज्य विनोबाजी ने नवंबर 1982 में अपनी मृत्यु के पूर्व लिखा था। **–सं.**

यह तो जाहिर है कि अनाज पैदा कर बहुत पैसा पैदा नहीं कर सकते। यह बात किसान भी जानते हैं। फिर भी वे मांग करते हैं कि अनाज की कुछ ज्यादा कीमत होनी चाहिए। साथ ही वे जानते हैं कि अनाज बहुत ज्यादा महंगा नहीं हो सकता। जो चीज सबको चाहिए, वह महंगी नहीं हो सकती। इसीलिए फिर वे तंबाकू, गन्ना, जूट, कपास, हल्दी जैसी पैसे की चीजें बोते हैं। यह भी ज्यादा दिन नहीं चलेगा, क्योंकि दिन-ब-दिन जनसंख्या बढ़ रही है। इसलिए जितनी जमीन में दूसरी चीजें बोई जायेंगी, उतने परिमाण में अनाज कम मिलेगा। इससे देश को नुकसान होगा। यद्यपि शक्कर खाने की चीज है, फिर भी वह अनाज की जगह नहीं ले सकती। दो तोले अनाज के बदले दो तोले शक्कर ले सकते हैं, लेकिन उसे ज्यादा नहीं खा सकते। इसलिए अनाज कम पड़े, इतना गन्ना नहीं बो सकते। देश को कपास भी चाहिए, क्योंकि कपास के बिना कपड़ा बनेगा नहीं। लेकिन कपास ज्यादा बोयेंगे, तो कपड़ा खूब मिलेगा, पर अनाज कम हो जायेगा। अनाज के बदले में कपड़ा, तंबाकू, गन्ना आदि से ही काम चलेगा नहीं। सारांश, जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती चली जायेगी, वैसे-वैसे अनाज के लिए ही जमीन का उपयोग करना होगा। तब पैसे के लिए तो चीजें बोते हैं, शायद वे छोड़ देनी पड़ेंगी या तो कम-से-कम बोनी होंगी।

हम चाहते हैं कि गांव के लोग अपने उद्योगों के आधार पर अपना जीवन चलायें। इसका मतलब यह नहीं कि वे ही पुराने औजार चलेंगे। समाज की परिस्थिति के अनुसार जितने औजार प्राप्त हो सकें और उनमें जितना संशोधन हो सके, उतना करके ग्रामीण सादगी से अपना जीवन चलायें। जहां हम सादगी की बात करते हैं, वहां कुछ लोग समझते हैं कि यह ऐश्वर्य और उत्पादन-वृद्धि नहीं चाहता होगा। हम जाहिर करना चाहते हैं कि हम सब प्रकार की अभिवृद्धि चाहते हैं, लेकिन उसके साथ तीन बातें और भी चाहते हैं। एक तो हर मनुष्य का सृष्टि के साथ संबंध बना रहे। इन दिनों कुछ लोग फैक्टरी में आठ-दस घंटे काम करते हैं। उन्हें खेत में काम करने, सृष्टि के साथ एकरूप होने का मौका नहीं मिलता। इसीलिए हफ्ते में एक दिन आनंद के लिए उन्हें छुट्टी दी जाती है या वे रात को सिनेमा देखकर कृत्रिम आनंद हासिल करते हैं। परंतु हम चाहते हैं कि मनुष्य के जीवन का सबसे श्रेष्ठ, प्रकृति के साथ एकरूप होने का आनंद बना रहे। दूसरी बात है खेती के साथ जो भी उद्योग जोड़े जायें, उनमें किसी का शोषण न हो, किसी भी प्रकार की ऊंच-नीचता या विषमता न रहे और तीसरी बात यह कि जो उत्पादन हो, उसका सम्यक विभाजन होना चाहिए। इस तरह सृष्टि के साथ सतत जीवित संबंध, शोषणरहितता और सम्यक—विभाजन, तीनों बातें कायम रखकर हम गांवों को समृद्ध बनाना चाहते हैं। मनुष्य के लिए अत्यंत सादा जीवन चाहने वाले हमारे शास्त्रों ने आज्ञा दी है कि 'अन्नं बहु कुर्वीत'—अन्न खूब बढ़ाओ। हम यह नहीं चाहते कि 'किसी भी प्रकार जीने' को जीवन कहा जाये। हम तो खूब ऐश्वर्य चाहते हैं। हम मानते हैं कि यह चीज दुनिया के सब देशों में, खासकर यूरोप और अमेरिका में भी लागू हो सकती है।

जैसे इस देश में और दुनिया में भी खेती नहीं टल सकती, वैसे ही कम-से-कम हिन्दुस्तान में ग्रामोद्योग नहीं टल सकते। दुनिया को हर हालत में खेती करनी ही पड़ेगी पर ग्रामोद्योगों के बारे में ऐसा नहीं कह सकते। जिस देश में जनसंख्या बहुत कम हो, वहां दूसरे उद्योग चल सकते हैं और जहां जमीन बहुत ज्यादा हो, वहां खेती में यंत्रों का उपयोग किया जा सकता है। परंतु हिन्दुस्तान जैसे देश में, जहां जमीन कम और जनसंख्या ज्यादा है, खेती में बड़े-बड़े यंत्र नहीं आ सकते और उद्योगों में भी सिर्फ ग्रामोद्योग ही चल सकते हैं।

इसलिए न केवल बेकारी के असुर के भय से, बल्कि स्थायी योजना के रूप में काम किया जाये। कोई हमसे पूछ सकते हैं कि आप इस तरह भेद क्यों करते हैं? हम भेद इसीलिए करते हैं कि जहां देशव्यापी योजना बनानी हो, वहां अगर कोई निश्चित विचार न हो तो वह योजना नहीं चल सकती। मैंने कह दिया है, यह ठीक है कि बेकारी-निवारण के लिए ग्रामोद्योग का आरंभ किया जा रहा है लेकिन आज नहीं तो कल, हमें यह सोचना होगा कि यहां जो आयोजन करना है, उसमें ग्रामोद्योग को एक महत्त्वपूर्ण विषय, जीवन का एक अंश मानकर स्थान देना होगा।

किसान को केवल पैसे के आधार पर अपना जीवन नहीं रखना चाहिए। उसके हाथ में दूसरे उद्योग होने चाहिए। तेल, शक्कर, जूता, कपड़ा आदि चीजें अपने गांव में ही बनानी चाहिए। किसान के हाथ में कुछ उद्योग होने चाहिए। और उन उद्योगों का माल शहर में बेचा जाये और वह महंगा भी रहे। गांव वालों को अपना खुद का तेल बनाना चाहिए और बाकी बेच देना चाहिए। कपड़े आदि का भी ऐसा ही होना चाहिए।

गांधीजी बार-बार कहते थे कि हिन्दुस्तान का किसान खादी के बिना नहीं टिकेगा। वे अनुभवी थे। उन्होंने आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा पायी थी। इंग्लैंड की हालत भी देखी थी। उनका कहना था कि अगर हम खादी इस्तेमाल नहीं करेंगे, तो न किसान की रक्षा होगी और न बहनों की रक्षा होगी। खादी से बहनों को घर में ही उद्योग मिलता है। गांव वाले शिकायत करते हैं कि खादी महंगी है। पर वह तो आपकी चीज है, बेचने की चीज है, खरीदने की नहीं। उसका तो ज्यादा पैसा मिलना ही चाहिए, तभी किसानों को कुछ पैसा मिलेगा। अनाज में तो उन्हें खास पैसा मिलेगा नहीं। जनसंख्या बढ़ेगी तो वे दूसरी चीजें पैदा नहीं कर सकेंगे, ज्यादा से ज्यादा जमीन अनाज में लगानी पड़ेगी। इसलिए गांव की चीजें शहरों में बेची जानी चाहिए। गांव वालों को खरीदनी नहीं चाहिए। गांव के सब लोगों को खादी पहननी चाहिए और बची हुई खादी शहर में बेचनी चाहिए। शहर वालों को भी ज्यादा दाम देकर उसे खरीदना चाहिए। परंतु आज तो देहात के लोगों का कुल जीवन पैसे पर खड़ा किया गया है। खेती के सिवा बाकी धंधे टूट गये हैं।

जमीन माता है। सबके पोषण का साधन हो सकती है। पर आज तो जमीन को ही अपने पैसे का साधन बनाया गया है। इसलिए पैसे वालों ने गरीब लोगों के हाथ से उसे छीन लिया है। घर में शादी हुई, तो सौ रुपये का कर्जा दो सौ रुपया लिखवाकर लेना पड़ा। दिन-ब-दिन रुपये बढ़ते गये और आखिर दो सौ लिखवाकर लेना पड़ा। दिन-ब-दिन रुपये बढ़ते गये और आखिर दो सौ रुपये के बदले में पांच एकड़ जमीन देनी पड़ी। इस तरह जमीन की पैसे में कीमत हो गयी और बेचारा किसान बेहाल हो गया।

वास्तव में जमीन का मूल्य रुपये में नहीं हो सकता। अगर आप दस हजार रुपये के नोटों को एक गड्ढे में रखकर ऊपर से पानी डालें, तो क्या फसल आयेगी? मिट्टी की कीमत पैसे में हो ही नहीं सकती। मिट्टी में से खाने की चीजें मिल सकती हैं, पैसे नहीं। फिर भी आज जमीन पैसे का साधन बनी और वह चंद लोगों के हाथ में आ गयी है। आपने जमीन को पैसे का आधार बनाया तो आपकी चोटी उनके हाथ में आ गयी। जमीन की मालकियत ही नहीं हो सकती। वह पैसे की चीज नहीं, प्राण की चीज है। उस पर अपना प्राण टिकेगा। परंतु आपने उसकी पैसे में कीमत की। परिणामस्वरूप गांव के उद्योग टूट गये और गांव के लोग चूसे गये।

मानव के लिए सबसे खतरनाक चीज अगर कोई हो वह है, उसकी जमीन से उखड़ना। जैसे हर एक पेड़ का मूल जमीन में होता है, वैसे ही हर एक मनुष्य का संबंध जमीन के साथ होना चाहिए। मनुष्य कावे खेती से अलग करना पेड़ को जमीन से अलग करना ही है। मेरा विचार है कि मनुष्य का जीवन जितना पूर्ण हो, उतना ही वह सुखी होगा। भूमि-सेवा पूर्ण जीवन का एक अनिवार्य अंग है। खेती से खुली हवा और सूर्य-प्रकाश मिलता है। जिससे आरोग्य-लाभ होता है। खेती से मानसिक आनंद प्राप्त होता है, बुद्धि तीव्र होती है। खेती भगवान की भक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। जितने लोगों को पूर्ण जीवन का मौका मिलेगा, समाज में उतना ही समाधान और शांति रहेगी।

कुछ लोग सिर्फ खेती करें और कुछ दूसरे धंधे ही करते रहें, यह रचना अच्छी नहीं। हरएक को दिन में दो-एक घंटे खेती में काम करने का मौका मिलना ही चाहिए। फिर बचे हुए समय में वह दूसरा उद्योग करे। खेती बुनियादी सेवा है। खेत एक सुंदर उपासना-मंदिर है, खेत एक उत्तम व्यायाम-मंदिर है, खेत एक उत्तम ज्ञान-मंदिर है। ❑

'सर्वोदय जगत' के सभी सुहृद पाठकों, शुभचिन्तकों, लेखकों से अनुरोध है कि अपने महत्त्वपूर्ण आलेख, रचनाएं, विचार एवं सुझाव पत्रिका के लिए भेजें। –सं.

सामयिकी

किसान और भूख की बात करना गद्दारी नहीं है

❑ संतोष भारतीय

आपको 1975 की एक प्रमुख उथ्कत याद दिलाना चाहता हूं। देश में आपातकाल लग चुका था। कांग्रेस के अध्यक्ष देवकांत बरूआ थे। देवकांत बरूआ ने एक दिन कहा, इंदिरा इज इंडिया। इंदिरा ही भारत है और पूरी कांग्रेस की टीम इंदिरा इज इंडिया, इंदिरा महान हैं, इंदिरा के अलावा भारत की कल्पना नहीं की जा सकती आदि-आदि वाक्य बोलने लगे। सारे अखबार इंदिरा इज इंडिया से भर गये। इंदिरा इज इंडिया के नारे पर नाचने लगे। जनता ने इंदिरा जी को जमीन पर ला दिया। उस नारे की हवा निकल गयी। ये मैं आपको क्यों याद दिला रहा हूं, क्योंकि टेलीविजन पर अचानक हिन्दुत्व का ज्वार आ गया है। वे सारे लोग, जिन्हें हिन्दू धर्म का एबीसी भी नहीं पता, वो सब हिन्दू होकर नारे लगाने लगे। एक बार टेलीविजन के कुछ एंकरों ने या कुछ पार्टिसिपेंट्स ने इस नारे की हवा निकाल दी। उन्होंने भारतीय जनता पार्टी के सारे प्रवक्ताओं से जो हिन्दू, हिन्दू चिल्लाते थे, उनसे पूछ लिया कि भाई राष्ट्रगान या राष्ट्रगीत जो भी आप कहो, क्योंकि आप कुछ और कहते हो और देश कुछ और समझता है, लेकिन वंदे मारतम गाकर सुना दो। सिर्फ टेलीविजन पर ही नहीं, देश के प्रमुख नेताओं से, छोटे और तृतीय दर्जे के नेताओं से भी राष्ट्रगान सुनने की पत्रकारों के बीच होड़ लग गयी। अचानक पता चला कि एक व्यक्ति भी मलयज शीतलाम् शस्य श्यामलाम नहीं गा पाया। वंदे मातरम नहीं गा पाया। यहां तक कि संघ के सुप्रतिष्ठित महान विचारक, जो हर टेलीविजन पर संघ का प्रतिनिधित्व करते हैं, संघ के विचार का प्रतिनिधित्व करते हैं, वो भी वंदे मातरम् नहीं गा पाये। मेरा ख्याल है इस समय भारतीय जनता पार्टी के सभी लोग इस गीत को 100-200 बार कंठस्थ करने में लगे हैं।

अब एक नई चीज सोशल मीडिया पर शुरू हुई है, जिसे देखकर मैं चौंक गया। कहा जा रहा है कि वो हिन्दू, हिन्दू नहीं है, जो मोदी का साथ न दे, यानी अगर आप जय मोदी, जय मोदी नहीं करते हैं तो आप हिन्दू नहीं हैं। अब इन्हें कौन समझाये कि हिन्दू आप हैं या नहीं हैं, ये तो आप साबित कीजिए, क्योंकि आपको ये पता ही नहीं है कि हिन्दू नाम का कोई धर्म नहीं है। धर्म सनातन है और आपको पता ही नहीं है कि सनातन धर्म क्या होता है? आप अगर हिन्दू शब्द कहां से आया, ये जानना है तो श्री मोहन भागवत के विचार सुनिए। आप वो भी नहीं करेंगे, क्योंकि आप इस देश में देशभक्ति को समाप्त करना चाहते हैं। आप देशभक्त हैं, आप गद्दार हैं। आप अगर देश के सवालों को उठाते हैं तो आप गद्दार हैं। लेकिन आप अगर किसानों की आत्महत्या को गाली देते हैं, गरीबों की भूख को गाली देते हैं, सिर्फ आप मोदी, मोदी कहते हैं तो आप देशभक्त हैं। ये नयी चीज सोशल मीडिया पर शुरू हुई है। ये मैं आपसे इसलिए कह रहा हूं कि यह स्थिति बताती है कि धीरे धीरे जब तर्कशक्ति खत्म हो जाती है, जब बताने के लिए काम का ब्यौरा आपके पास नहीं होता है, जब आप इसका जवाब नहीं दे पाते कि हमने जो वादे किये थे, वो वादे कौन-कौन से थे और उनमें से कितने पूरे हुए, तब इस तरह के तर्क उभरते हैं कि अगर आप मोदी, मोदी नहीं कहते हैं, मोदी का साथ नहीं देते हैं, तो आप हिन्दू हैं ही नहीं, गद्दार हैं।

मोदी जी का गुजरात मॉडल सारे देश में बिका, लोगों ने गुजरात मॉडल के लिए वोट दिये, लेकिन गुजरात का मॉडल किसी भी प्रदेश में न शिवराज सिंह, न वसुंधरा राजे, न योगी और न ही रावत के प्रदेश में कहीं दिखायी दिया। इनमें से किसी ने पलट कर भी इस शब्द का इस्तेमाल नहीं किया कि हम गुजरात मॉडल से अपने प्रदेश का विकास करेंगे। मुझे चिन्ता है कि मोदी जी की सारी अच्छाइयों और उनकी सारी कोशिशों को उनके साथियों तबाह कर दिया है। मैंने जितने नाम लिये और जितने बचे हुए नाम हैं, कोई गुजरात मॉडल का नाम क्यों नहीं लेता? जिसने भारतीय जनता पार्टी को केन्द्र में सत्तारूढ़ कराया, उस गुजरात मॉडल का नाम योगी जी, नीतीश कुमार, रावत जी, शिवराज सिंह चौहान या वसुंधरा राजे क्यों नहीं लेती हैं? असम को छोड़ दीजिए। जितने भी नाम हैं, आप उसको इसमें जोड़ सकते हैं, पर ये प्रमुख नाम हैं। ये लोग गुजरात मॉडल का जिक्र क्यों नहीं करते हैं? ये सवाल मेरे दिमाग में हैं और तब मुझे लगता है कि ये सारे लोग नरेन्द्र मोदी को बहकाकर या फुसलाकर असफल करना चाहते हैं। इसीलिए कृषि और संचार के क्षेत्र में यथास्थिति बनी हुई है।

आप जितने लोग हैं, जो ये कहते हैं कि मोदी-मोदी कहो, नहीं तो तुम गद्दार हो, वो खुद अपने मोबाइल पर तीन से चार बार कॉल ड्रॉप के शिकार होंगे। आप कॉल ड्रॉप कर रहे हैं, फोन नहीं मिल रहे हैं, बात नहीं हो पा रही है और आप मोबाइल के जरिए

पूरा बैंकिंग सिस्टम चलाने की बात करते हैं। कम से कम उन लोगों से तो सवाल करो, जो इस कॉल ड्रॉप के लिए जिम्मेदार हैं। जो इन मोबाइल कंपनियों को इतना ज्यादा पैसा दिलवाने के लिए जिम्मेदार हैं। आप एक कॉल करते हैं, तो तीन कॉल के पैसे लिए जाते हैं। जाहिर है, वो तीन कॉल के पैसे मोबाइल कंपनियों को जा रहे हैं। एक कॉल के समय में आप तीन कॉल का पैसा दे रहे हैं, लेकिन सरकार को इसकी चिन्ता नहीं है। अब अगर कोई ये कहे कि इसमें सरकार के कुछ बड़े लोगों के पास भी उसकी दक्षिणा जा रही होगी, अगर वो ये आशंका करता है, तो इसमें बुरा क्या है? सरकार इस पर ध्यान क्यों नहीं दे रही है? इतनी सारी बातचीत हुई, लेकिन हमारे पास इसका कोई कोई आंकड़ा नहीं है कि हमारे देश में कितना निवेश आया और वो निवेश कहां लगा? क्या वो प्राइवेट सेक्टर में लगा या वो कंज्यूमर सेक्टर में लगा, जिसको हम कॉस्मेटिक सेक्टर कहते हैं। अच्छे-अच्छे फ्रिज, टेलीविजन और कारें सब आ रही हैं, लेकिन गरीब के खाने के लिए, रेलवे में गरीब के बैठने के लिए, रेलवे में साफ-सफाई के लिए, देश में साफ-सफाई के लिए इंफ्रास्ट्रक्टर बनना चाहिए, उसकी क्या हालत है? ये सब लोग जो इसके लिए जिम्मेदार हैं, प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को गुमराह कर रहे हैं। उनको ये समझा रहे हैं कि आपका विरोध करना कुछ लोगों की आदत है, इसलिए आप इसके बारे में मत सोचिए। अभी इंतजार कीजिए कि आपके ऊपर और क्या-क्या परेशानियां आने वाली हैं?

इस बात को मैं स्पष्ट कर दूं कि हमारा देश ब्लैकमनी नहीं रखता है। हमारे देश की सारी ब्लैकमनी, जो विदेशों में थी, एक जुमला था, एक झूठ था, एक लफ्फाजी थी, जिसे आडवाणी जी, बाबा रामदेव और खुद प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और अरुण जेटली ने मिलकर 2014 में देश को बेचा था। हमने उस कालाधन पर, उस छिपे हुए धन पर कोई वार नहीं किया, जो विदेशों में था। हमने ये मान लिया कि ये सारा कालाधन इस देश के लोगों के पास है, इसलिए आपने नोटबंदी कर दी। अब रिजर्व बैंक या बैंकों के लोग ये समझ नहीं पाये कि हमको कितना रुपया लेना है, कितना नहीं लेना है? जितना रुपया दिया था, उससे ज्यादा रुपया आ गया। फिर आप कहने लगे कि नहीं, नहीं, उतना नहीं, जितना हमने दिया था, उससे ज्यादा नहीं आया, उतना ही आया है। तो फिर कहां गयी फेक करेंसी, कहां गए नकली नोट, कहां गया कालाधन, इस सवाल को मत पूछिए। अब कह रहे हैं कि जो पैसा बैंकों में आया, हम उसकी पहचान कर रहे हैं।

एक मंत्री टेलीविजन पर कह रहे थे, आपको क्यों बुरा लगता है कि जो पैसा ब्लैकमनी था या जो कालाधन था या जो फेक करेंसी थी, वो पूरी की पूरी आ गयी। अब उसे यह कहते हुए शर्म नहीं आयी कि फेक करेंसी हमारे खजाने में आ गयी और हमने उसे चलन में ला दिया, तब ये तो नोटबंदी मनी लॉन्ड्रिंग का सबसे बड़ा स्कैम हुआ, लेकिन इस पर सवाल मत उठाइए। अगर आप सवाल उठायेंगे तो गद्दार हो जायेंगे, फिर फेसबुक पर कैम्पेन चलेगा कि जो मोदी का साथ न दे, वो गद्दार है। इंदिरा इज इंडिया, जो नारा उस समय कांग्रेस ने लगाया था, कांग्रेस अध्यक्ष ने लगाया था और जिसका परिणाम 1977 में देखने को मिला। मैं नहीं चाहता हूं कि वो परिणाम भारतीय जनता पार्टी को नहीं, बल्कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को देखने को मिले। नरेन्द्र मोदी से अब भी बहुत आशा है। नरन्द्र मोदी में क्षमता है, वो कर सकते हैं, पर ये जो आसपास महान बुद्धिमानों की चौकड़ी जमा है, चाहे वो मंत्रिमंडल या अधिकारियों या उनकी पार्टी में हों, उनसे निजात पाने की जरूरत है। तभी वो इस देश के विकास के लिए कुछ सोच पायेंगे। अन्यथा जो स्थिति आज गुजरात में हो गयी है, वो होनी ही नहीं चाहिए थी। ❑

‘लोहा’ बनाम ‘गेहूं’ की दुनिया

❑ डॉ. अनुज लुगुन

हिन्दी के कवि धूमिल ने कहा था कि ‘दरअसल हमारे यहां संसद तेली की वह घानी है/जिसमें आधा तेल और आधा पानी है।’ तो क्या इसी वजह से हमारे देश के किसानों ने अलग से अपना ‘किसान मुक्ति संसद’ का आह्वान किया? हम सवाल के साथ ही बात शुरू करते हैं।

देशभर के किसानों ने 20 नवंबर को किसान मुक्ति संसद का आह्वान किया और राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में एकत्रित हुए। समूचे देश के 180 किसान संगठन ‘अखिल भारतीय किसान संघर्ष समन्वय समिति’ के बैनर तले रामलीला मैदान से संसद मार्ग पहुंचे। संभवतयाअब तक सबसे बड़ा किसान समन्वय समिति आज के वैश्विक समय की जरूरत है।

पी साईनाथ की रिपोर्ट के अनुसार, नब्बे के बाद डेढ़ दशकों में लाखों किसानों ने आत्महत्या की है। आत्महत्या का यह सिलसिला रुक नहीं रहा है। कई राज्यों में कर्ज माफी के बावजूद किसानों की आत्महत्या में कमी नहीं हुई है। साल 2016 के राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के मुताबिक, देश में किसान आत्महत्या की दर 42 फीसदी बढ़ी है। इसके बावजूद किसानों की समस्याओं के प्रति उदासीनता बनी हुई है। किसान संगठनों ने इसी उदासीनता के विरुद्ध 'किसान मुक्ति संसद' का आह्वान किया है।

किसान संसद कर्ज माफी और समर्थन मूल्य की मांग को प्रमुखता से रख रहे हैं। इसमें स्वामीनाथन कमेटी की सिफारिशों को लागू करने की बात है। सरकार का मानना है कि वह समय-समय पर किसानों को कर्ज में छूट देती है और फसलों के लिए समर्थन मूल्य भी तय करती है। इन दोनों मुद्दों पर 2004 में बनी स्वामीनाथन कमेटी ने सिफारिश की थी कि किसानों के कर्ज की ब्याज दरों में कटौती की जाये और समर्थन मूल्य औसत लागत से 50 फीसदी ज्यादा हो। लेकिन, इन दोनों मुद्दों पर सरकार की ओर से कोई बुनियादी क्रियान्वयन न होने से किसानों में असंतोष है। आज खेती के काम का लागत मूल्य बढ़ गया है। खेती के लिए बीज, तकनीक और उर्वरक किसानों के हाथ में नहीं हैं। ये सभी किसानी की बुनियादी वस्तुएं बाजार के नियंत्रण में हैं। किसानों को खेती के लिए बाजार में पहुंचना ही होता है। बाजार में पहुंचने से पहले किसान कर्ज के लिए किसी संस्था में पहुंचता है। तब जाकर वह अपने खेत में फसल डालता है। इसके बाद दो स्थिति पैदा होती है—पहला मौसम, और दूसरा बाजार मूल्य। मौसम की मार किसानों को झेलनी पड़ती है।

इसके अलावा किसानों के लिए सबसे विकट स्थिति तब होती है, जब उसे उसकी उपज का मूल्य नहीं मिलता है। यह सबसे ज्यादा निराशाजनक होता है। सवाल यही है कि किसानों की उपज का मूल्य बाजार में कौन तय करता है? सरकार या बिचौलिये? क्योंकि किसानों को उपज का वास्तविक मूल्य नहीं मिलता है, जबकि किसानों की उपज पर आधारित उद्योग दिन दूनी फलते-फूलते जाते हैं। उदाहरण के लिए आलू के मूल्य में गिरावट हो जाती है, लेकिन आलू आधारित उत्पाद तैयार करने वाली 'चिप्स' कंपनियां हमेशा मुनाफे में होती हैं। आलू उपजाने वाले किसान आत्महत्या को विवश होते हैं, जबकि चिप्स कंपनियां मुनाफे में होती हैं। यानी इन दोनों के बीच में बाजार है और वह किसानों के नियंत्रण में नहीं है। ऐसी स्थिति में यदि सरकार पहल नहीं करेगी, तो आखिर कौन करेगा?

आम तौर पर जिनका किसानी से वास्ता नहीं है, उनका मानना होता है कि खेती-किसानी जैसे क्षेत्र में भी अंतर्राष्ट्रीय दबाव कैसे नीतिगत रूप से काम कर सकता है? यह बहुत बड़ी सच्चाई है कि अंतर्राष्ट्रीय दबाव आज के किसानों के जीवन में सीधे हस्तक्षेप करता है। एक तो सरकारों को फंडिंग करने वाली अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियां 'सब्सिडी' न देने का निर्देश देती हैं, दूसरे अब खेती की दुनिया में भी बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का सीधा हस्तक्षेप है। इसके उदाहरण के लिए कपास की खेती को लिया जा सकता है। शासन में आते ही केन्द्र की एनडीए सरकार ने कपास के जीएम बीज (जैव संवर्धित) के मूल्य को कम करने की घोषणा की थी। देश में कपास की लगभग 90 फीसदी बुआई मानसेंटों के बीज की होती है। दुनिया की सबसे बड़ी बीज उत्पादक अमेरिकी कंपनी मानसेंटों ने इस पर सीधे आपत्ति दर्ज की और भारत से अपने व्यापार को समेटने की चेतावनी दे दी थी, और उस समय कपास के बीज का मूल्य कम नहीं हो सका। इस पर फिर कभी बात नहीं हुई। बीज से लेकर बड़ी तकनीकों, कीटनाशकों, आदि खेती संबंधी उपकरणों पर बड़ी कंपनियों का नियंत्रण है। यह कितनी बड़ी विडंबना की बात है कि खेती के तकनीकों, रसायनों और उसके उत्पादों से जुड़ी कंपनियां अरबों का व्यवसाय करती हैं, लेकिन किसान आत्महत्या करने को विवश होते हैं।

इसके अलावा किसानों के बीच जोत की आंतरिक समस्या भी है। एक तो देश में चकबंदी की योजना सफल नहीं हुई, दूसरे, किसानों के जोत लगातार बंटते जा रहे हैं। इस वजह से खेती में जटिलता पैदा हो रही है। इससे लागत मूल्य और पैदावार पर असर पड़ रहा है।

आदिवासी किसानों के साथ एक दूसरी स्थिति है। आदिवासी लोग अपनी जमीन पर स्थिर नहीं हैं। वे विस्थापन के शिकार हैं। ऐसे में उनकी खेती कैसे संभव होगी? आदिवासी किसानों के साथ तो सबसे बड़ी चुनौती यह है कि कथित मुख्यधारा का बहुत बड़ा हिस्सा बौद्धिक और वैचारिक रूप से भी उन्हें 'किसान' नहीं मानता है। उन्हें अब भी यह लगता है कि आदिवासी जंगलों में रहते हैं और जंगल के उत्पाद पर ही उनकी आजीविका है। इस वजह से उनकी खेती की बात बहुत कम हेती है। जबकि, कृषि उनकी आजीविका का अनिवार्य हिस्सा है। किसान मुक्ति संसद ने आदिवासी किसानों के पक्ष को भी शामिल कर संघर्ष को विस्तार देने की कोशिश की है।

आज की वैश्विक दुनिया 'लोहा' बनाम 'गेहूं' की दुनिया बन गयी है। सरकारों के लिए 'लोहे' की खेती ज्यादा फायदेमंद है और वे उसमें व्यस्त हैं। ऐसे में किसानों की परवाह किसे होगी? अंततः किसानों को अपना 'संसद' तय करना होगा। धूमिल की शब्दावली में 'आधा तेल' और 'आधा पानी' से किसानों के हित संभव नहीं हैं। किसान मुक्ति संसद को कर्ज माफी और समर्थन मूल्य से आगे बढ़कर पूंजीवाद से मुक्त होने की लड़ाई लड़नी होगी।

भारत की कृषि : समस्या व समाधान

❑ अविनाश काकड़े

भारत की आज़ादी तक की किसानी की वास्तविकता : भारत कृषि प्रधान देश था। आज भी हमारी 50 फीसदी से ज्यादा जनसंख्या कृषि व्यवसाय पर अपना निर्वाह चलाती है। हमारा देशें हजारो वर्षों से कृषि व्यवसाय पर निर्भर रहा है। हमारे यहां कृषि केवल व्यवसाय तक सीमित नहीं रही थी, बल्कि यहां की जीवन पद्धति को कृषि संस्कृति के नाम से कहा जाता रहा है। भारत में परंपरागत खेती व खेती पर आधारित ग्रामोद्योग रहे हैं। ग्राम स्तर पर इनका विकास भी हुआ। कुछ चीज़ों में उदाहरण के लिये कपड़ा व मसालों के उत्पादों का निर्यात भी होता रहा।

भारत के इतिहास में अनेक प्रकार के सामाजिक, सांस्कृतिक विकास व ह्रास की परते हमारी नज़र में आती हैं। यहां कुछ सत्तावान लोग व कुछ समूह अच्छी आर्थिक, भौतिक, सांस्कृतिक अवस्थाओं में रहे हैं। लेकिन सामान्य जनता गरीबी में ही रही यह भी सच है। मर्यादित संसाधनों की वजह से जरूरतों को त्याग कर यह बहुसंख्य समाज भौतिक सुखों को अनुपयुक्त मानकर समाधान का जीवन जीते हुए हमें इतिहास के पन्नों में नजर आता है। उसी प्रकार का धार्मिक, आध्यात्मिक व दैवी चिंतन भी यहां के ज्ञान की सत्ता को नियंत्रित करने वालों ने विकसित किया व आम जनता के मस्तिष्क में उतारने की प्रक्रिया व्यवस्थित ढंग से चलायी। इसलिए भारतीय समाज जीवन व जीवन की गतिविधियाँ काफी हदतक स्थिर हो गयी थी। विकास की गति लुप्त हो गयी थी। समाज जीवन में हमारे यहां कुछ संतों के कथनों का अनुसरण करते हुए मराठी में कहते हैं— 'डेविले अनंते तैसे ची रहावे' – मतलब भगवान की जैसी मर्जी वैसा होगा। इसका परिणाम कृषि व्यवसाय पर भी हुआ। हमारे कृषि उत्पादन की पद्धति में व प्रक्रियाओं से सैकड़ों वर्षों तक कोई सुधार नहीं हुआ। कुछ राजाओं ने खेती के सुधार व उत्पादन बढ़ाने के संबंध में कुछ छिटपुट कार्य किया।

यहां के गांवों में किसानी करने वाले खेतीहर व जमीनदार ऐसे दो प्रकार के समूह यहां विकसित हुए। जमीन में मेहनत करके जमीनदार को व राजाओं को अनाज का लगान देकर जो बचता वह अनाज अपने परिवार के निर्वाह के लिये उपयोग में लाया जाता था। इसी से सभी सीमित जरूरतें पूरी करने की कोशिश अमूमन मेहनतकश किसान किया करते थे। हर दूसरे-तीसरे वर्ष अकाल व बाढ़ की संभावना बनी रहती थी, जैसे आज भी है। खेती के 10 वर्षों में 2-3 वर्ष अच्छे छोड़कर अन्य वर्षों में कम फसल व अकाल की स्थितियाँ बनी रहती थी। उसके बावजूद लगान अदा करना ही पड़ता था। अशिक्षा व शास्त्र आधारित अंधश्रद्धा पिछड़ेपन में सहयोगी थी। लोगों को स्वास्थ्य व सफाई का सामान्य ज्ञान भी नहीं के बराबर था। बीमारियों में मरना भी प्राकृतिक घटनाएं हो गयी थी। आजादी तक का औसत आयुर्मान 33 वर्ष का था। आज हमारा आयुर्मान 67 वर्ष का है। भारत के गांव कूड़ा-कचरा व बीमारियों के लिए प्रसिद्ध थे। घरों में बच्चों का प्रजनन तो 12-15 तक औसतन था। लेकिन बच्चे 2-3 ही बच पाते थे। स्त्रियाँ केवल भोग, चूल्हा-चौका व सेवा का साधन मात्र रह गयी थी। इसके साथ ही साथ अनेक प्रकार की जातियां, रूढ़ियां, परंपरा यहाँ के माहौल में पनपती गयी, और उसे ढोते रहने से यहां का सामाजिक स्वास्थ्य भी बिगड़ता गया। आम लोगों के जीने-मरने की चिंता से परे एक विशिष्ठ समाज का ही महत्व यहां शेष रहा। इसलिए हज़ारों वर्षो से तकलीफ में जी रहे किसानी समाज की वास्तविकता मुख्य प्रवाह का कभी हिस्सा नहीं बन पायी।

भारत में अंग्रेजों के राज में समाज सुधार व परिवर्तन की कोशिशें कुछ व्यक्तियों के माध्यम से शुरु हुई। इसमें महाराष्ट्र, पुणा के 'महात्मा ज्योतिराव फुले' प्रमुख है। ज्योतिराव फुले ने सरकार के समक्ष भारतीय कृषि की समस्या की परते खोलने के प्रक्रिया का आरंभ 1850 में किया। उन्होंने *'किसान का कोड़ा'* नामक लेख लिखकर सरकार को किसान की वास्तविक स्थिति का दर्शन कराया। इस लेख (पुस्तिका) में उन्होंने भारत की सामाजिक समस्या, जातीयता, अंधश्रद्धा, कुरीतियों का भी आवश्यक जिक्र करके खेती के सुधार की योजना रखीं। साथ-साथ खेतीहर समाज के शिक्षा की महत्त्वपूर्ण बात सरकार के समक्ष पेश की। 1848 में लड़कियों के स्कूल व किसानों के लिए रात्रि की पाठशालाओं की शुरुआत की।

महात्मा ज्योतिराव फुले ने अस्पृश्यता, अंधश्रद्धा, जातीयता, गलत रूढी-परंपराओं के खिलाफ आंदोलन चलाया। 24 सितंबर 1874 में *'सत्यशोधक समाज'* की स्थापना अपने समविचारी साथियों के साथ की। महात्मा ज्योतीराव फूले ने 1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में किसान के सवालों को उठाने का विशेष आग्रह किया था।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में जो कि 1920 के बाद का आन्दोलन महात्मा गांधीजी के नेतृत्व में हुआ। अंग्रेजों के न्यायालय में गांधीजी ने अपना परिचय देते समय, 'मैं किसान व बुनकर हूं' यह परिचय दिया था। इस आंदोलन में मुख्यतः किसान व मजदूर समाज के न्याय की मांगे ही प्रमुखता से रही है। हमारे आजादी के आंदोलन में चंपारण (बिहार) के नील का सत्याग्रह, बारडोली (गुजरात) के लगान का सत्याग्रह, खेडा (गुजरात) का सत्याग्रह, उत्तर प्रदेश के किसान का आंदोलन, जंगल सत्याग्रह, महाराष्ट्र व दक्षिण भारत में असहयोग आंदोलन हुआ। 1930 में उत्तर

प्रदेश से वाजीब कृषि उपज के दाम का मामला उठा था। विधानसभा में इस पर बहस हुई। किसान के कर्ज का अध्ययन किया गया। तो उसमें लगान की बड़ी रकम व वाजिब दाम ना मिलना यह कर्ज बढ़ने की वजह बतायी गयी थी। आजादी के प्रमुख नेता महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, विनोबा भावे, चौधरी चरणसिंह, सर छोटूराम इन प्रमुख नेताओं के नेतृत्व में हुआ। इन्होने कृषि समस्या को आंदोलन के माध्यम से सरकार के समक्ष रखकर सामान्य खेतीहर लोगों को मुख्य प्रवाह मे लाने का पुरजोर प्रयास किया।

भारत के आजादी के बाद की कोशिश व परिणाम : आज़ादी के तुरंत बाद जवाहरलाल नेहरू जी के सरकार का मुख्य लक्ष्य कृषि समस्या पर केंद्रित हुआ। कृषि में सुधार के लिए उन्होंने सर्वोच्च प्राथमिकता दी। 1950 में देश के 82 प्रतिशत लोग 5 लाख 40 हज़ार गांवों में रहते थे। भारत गांवों का देश माना जाता था। कृषि सुधार के लिए निम्न कदम उठाये गये :

1. खेती पर से सभी प्रकार के लगान (टैक्स) उठाए गए।
2. प्रथम पंचवर्षीय योजना कृषि विकास के लिए समर्पित की गयी।
3. जमीन का निर्माण करने के लिए प्रोत्साहन दिया गया।
4. खेतीहर को जमीन देने की दृष्टि से जमीदारी के खिलाफ कानुन बनाये गये।
5. समूह कृषि विकास के लिए 'सहकार कानून' बनाये गये।
6. सिंचन का क्षेत्र बढ़ाने के लिए सिंचन प्रकल्पों के निर्माण का प्रारंभ हुआ।
7. समुदाय विकास योजना को 1952 में बनाया गया।
8. इम्पीरियल बैंक का 1955 में राष्ट्रीयकरण करके स्टेट बैंक ऑफ इंडिया से नामकरण किया गया।
9. अमरिका के साथ 1956 में पीएल-80 फुड फॉर पिस करार किया गया।
10. राष्ट्रीय विकास योजना 1953 में बनायी गयी।
11. कुल बजट के 31 प्रतिशत रकम ग्रामीण कृषि विकास के लिए खर्च की गयी।

इससे कुछ महत्त्वपूर्ण सुधार व बदलाव की दिशा में अच्छे परिणाम दिखने लगे जिसमें :

1. अन्नधान्य का उत्पादन जो 1950 में 50 दश लक्ष टन था। 1956 में बढ़कर 65.8 दश लक्ष टन हुआ।
2. राष्ट्रीय उत्पादन में 18% की बढ़ोत्तरी हुई।
3. महंगाई (वस्तुओं की कीमतें) 13 प्रतिशत तक कमी हुई।
4. प्रति व्यक्ति आय 18 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई।
5. योजना का प्रावधान 2378 करोड़ रुपयों का था। लेकिन प्रत्यक्ष 1960 करोड़ रुपयों का ही खर्च हुआ।
6. राष्ट्रीय सकल उत्पादन विकास की गति 2.1 प्रतिशत उद्दिष्ठ था। लेकिन प्रत्यक्ष में यह 3.6 प्रतिशत तक विकसित हुआ।
7. पहली पंचवर्षिय योजना के सकल राष्ट्रीय उत्पादन **(GDP)** में कृषि क्षेत्र हिस्सा 50 प्रतिशत था।

वर्तमान कृषि व्यवसाय के आवाहन : सन 1970 के दशके बाद फिरसे कृषि की समस्याएं बढ़ रही है। इसमें कुछ महत्वपूर्ण बदलाव की ओर हमारा विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

आज़ादी के समय हमारी कुल जन संख्या 37 करोड़ थी। आज हमारी जनसंख्या 130 करोड़ है। 1950 में करीब 6 करोड़ परिवार कृषि पर निर्भर थे (मतलब 30 करोड लोग) आज 15 करोड़ परिवार कृषि क्षेत्र पर निर्भर है (मतलब करीब 75 करोड लोग)। हमारे देश में दुनिया के तुलना में 2.5 प्रतिशत कृषि योग्य जमीन व 4.0 प्रतिशत सिंचित कृषि व्यवस्था दुनिया की तुलना में है। दुनिया के 17 फीसदी जनसंख्या का भार हम ढो रहे है। दुनिया के तुलना में 15 फीसदी पशुधन हमारे देश में उपलब्ध है। हमारी बढ़ती जनसंख्या हमारी कृषि के समस्या का एक बहुत बड़ा भार है। जनसंख्या नियंत्रण के लिए ग्रामीण इलाकों में कोई व्यवस्थित प्रबोधन नहीं है और स्वास्थ्य के सुरक्षा की कोई गारंटी भी नहीं। *परिणामस्वरूप कमजोर स्त्री-पुरुषों की संख्या बढ़ रही है।* राष्ट्रीय कृषि आयोग की रपट के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि दर कम है, जिससे देश के अधिकतर हिस्सों में जनसंख्या अत्यधिक हो रही है।

आज़ादी के समय कृषि में 4 प्रतिशत सिंचन व्यवस्था थी। आज वह 40 प्रतिशत हो गयी है। 1950 में 50 दश लक्ष टन खाद्यान्नों का उत्पादन होता था। आज 135 दश लक्ष टन तक खाद्यानों का उत्पादन बढ़ा है। गेहूं का उत्पादन 9 गुना व धान का 3 गुना उत्पादन बढ़ा है। आज भारत चीन के बाद सबसे बड़ा फल-सब्जी उत्पादक देश है। चीन व अमेरिका के बाद भारत सबसे बड़ा खाद्यान्न उत्पादक देश है। बावजूद दलहनों का उत्पादन पिछले 4 दशको में 4.5 प्रतिशत ही बढ़ा। भारत में दलहनों का ज्यादा तर उत्पादन असिंचित कृषि के क्षेत्र में ही होता है। देश में 60 प्रतिशत खेती मानसून आधारित **(Rain Fed)** है। यह क्षेत्र कुल खाद्यान्न उत्पादन में 40 प्रतिशत खाद्यान्न का उत्पादन करता है।

पिछले 20 वर्षो में भारत में 3 लाख से ज्यादा किसानों ने आत्महत्या की है। इसमें असिंचित क्षेत्र से आत्महत्या करनेवाले किसानों की संख्या अधिक है। उदाहरण के लिये महाराष्ट्र के विदर्भ-मराठवाड़ा के मरने वाले किसानों की संख्या सबसे ज्यादा रही है। देश के असिंचित कृषि क्षेत्र में 88 प्रतिशत मोटा अनाज (जवार, बाजरा, मका), 87 प्रतिशत दलहन, 48 प्रतिशत चावल व 28 प्रतिशत कपास का उत्पादन होता है। कुल देश के उत्पादन में 40 प्रतिशत उत्पादन करनेवाले 60 प्रतिशत असिंचित क्षेत्र को सरकार की बिजली, पानी व खाद पर मिलनेवाली सबसीडी का लाभ नहीं मिल पाता है। असिंचित कृषि में लागत मूल्य ज्यादा व उत्पादन कम होता है। सरकार का न्यूनतम उत्पादन मूल्य कपास, अरहर, धान, ज्वार, मक्का, बाजरा, रागी, मुंग, उडीद इत्यादि फसलों के लिए प्रत्यक्ष उत्पादन खर्च से काफी कम होता है। उदाहरण के लिये 2015-16 में महाराष्ट्र

शासन की ओर से *'कपास'* के लिये एक क्विंटल उत्पादन की लागत कीमत 6900 रुपयों की सिफारिस केन्द्र सरकार के कृषि मूल्य आयोग को की थी। लेकिन केन्द्र सरकार द्वारा प्रत्यक्ष कपास का न्यूनतम मुल्य 4160 रुपया प्रति क्विंटल घोषित किया गया। मतलब एक क्विंटल कपास के घोषित मूल्य व लागत मूल्य में 2740 रुपयों का अंतर आया है। यह क्षेत्र पूरी तरह मानसून के पानी पर निर्भर होने के कारण हर दूसरे या तीसरे वर्ष यहां अकाल का सामना किसान को करना पड़ता है। आवश्यक मूलभूत सुविधाएं जैसे पानी, बिजली, रास्ते, मार्केट के उपलब्ध नहीं होने के कारण खेती उत्पादन पर व किसान पर उसकी सीधी मार पड़ रही है। मुलभूत संसाधनों के अभाव में किसान खेती के साथ किसी प्रकार का व्यवसाय ग्रामीण इलाको में खड़ा नहीं कर पा रहे हैं।

न्यूनतम समर्थन मूल्य 2017-18
(भारत सरकार)

क्रम	वस्तु	प्रति क्विंटल कीमत
1.	धान	1590
2.	जवार	1725
3.	बाजरा	1425
4.	मका	1425
5.	रागी	1900
6.	तुवर (अरहर)	5450
7.	मुंग	5575
8.	उडद	5400
9.	मुंगफल्ली	4450
10.	सोयाबीन	3050
11.	सुरजमुखी	4000
12.	तील	5300
13.	राय तील	3950
14.	कपास धागा (मध्यम)	4020
15.	कपास धागा (लंबा)	4320

वर्तमान किसान आंदोलन की मांगे

1. कृषि उत्पादन को लागत कीमत से 50 प्रतिशत से ज्यादा दाम मिले।
2. कृषि उत्पादन के लिए कर्ज की सुविधा हो।
3. कृषि उत्पादन के लिए योग्य फसल बीमा का संरक्षण मिलें।
4. कृषि उत्पादन के लिए मुलभूत सुविधाओं का निर्माण हो।
5. शासन-प्रशासन की ओर से योग्य नीतियाँ व क्रियान्वयन तत्परता से होवे।
6. राष्ट्रीय कृषि आयोग, 2006 (डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन) की शिफारिसे लागू की जाये।

कृषि उत्पादन के योग्य कीमत (MSP) के लिए व्यवधान

- हर राज्य व विभाग में एक ही फसलों के लागत मूल्य में अंतर आता है।
- हर राज्य व विभाग में सिंचित व असिंचित फसलों के लागत मूल्य में अंतर आता है।
- हर राज्य व विभाग में स्थानिक मज़दूरी, बिजली पानी व ट्रांसपोर्ट की सुविधा के खर्चो में अंतर आता है।
- हमारे यहां के औद्योगिक क्षेत्र के लिए आवश्यक कच्चे माल की पूर्ति की योजना को प्राथमिकता दी जाती है।
- अंतरराष्ट्रीय बाजार में कीमतों के कम होने के संकट को ध्यान में रखकर योजना बनायी जाती है।
- जरुरतमंदो को अन्न की आपूर्ति की आवश्यकता को मद्देनज़र रखा जाता है।
- बाजार के उत्पादन कीमतों में उतार-चढाव की बात देखी जाती है।

कृषि मूल्य निर्धारण आयोग **(Commission forAgriculture Coss' and Prices)** देश के 5800 केंद्रों से आंकडे जुटाती है। इसमें कृषि विश्वविद्यालय व दूसरे केंद्र से यह उत्पादन खर्च के आंकडे **CACP** जुटाती है। इन सबको सामने रखकर देश के औसत किसान के उत्पादन का न्यूनतम उत्पादन मूल्य तय किया जाता है। यह भी केवल 25 फसलों तक सीमित है। फल और सब्जी अभी तक न्यूनतम मूल्य के श्रेणी में नहीं लिया गया है।

राष्ट्रीय किसान आयोग का CACP को महत्वपूर्ण सुझाव : कीमतों में अनुचित वृद्धि के कारण गेहूं, दालों, चीनी और तिलहनों का आयात करना आवश्यक हो सकता है। किन्तु हमें इसे एक आदत बनाने के खतरे से बचाना चाहिये। हमारे खाद्य बजट को देशज रूप से उगाए गये खाद्य द्वारा घोषित किया जाना चाहिये, क्योंकि *कृषि हमारी ग्रामीण आजीविका, सुरक्षा पद्धति का आधार है।*

किसान परिवारों को घरेलु और विदेशी बाजारों दोनों के सन्दर्भ में गुणवत्ता सजग बनाया जाना चाहिये। विदेशी बाजार में हमारी कृषि की प्रतिस्पर्द्धात्मकता केवल तभी सुधर सकती है यदि हम *किसान परिवारों की उत्पादकता* और विश्व बाजार में मांग के अनुसार *फसलों की गुणवत्ता* सुधारने में मदद करें।

कृषि के लिए कर्ज (Credit) की सुविधा

- आज सहकारी व राष्ट्रीयकृत बैंको से फसलों का कर्जा खेती कर्ज के नाम से मिलता है। फसल कर्जा फसलों पर ही मिलना चाहिए।
- कर्ज में से फसल बीमा की राशि बीमा कंपनी ले जाती है, पर फसलों के कम होने के बाद की जिम्मेवारी बीमा कंपनी नहीं लेती।
- खरीफ फसलों के अप्रैल-मई के लिये मिलनेवाला कर्जा अगस्त-सितम्बर तक मुश्किल से मिल पाता है। मई तक कर्ज की प्राप्ति हो जानी चाहिए।
- फसलों के लागत खर्च के अनुपात में कर्ज की राशी 30-40 प्रतिशत ही मिलती है। पूरा कर्जा मिलना चाहिये।
- ब्याज के दर चक्रवृद्धि ब्याज के आधार पर बैंक वसूलती है। यह बंद होना चाहिए।
- सरकार के ब्याज के छूट की योजना के तहत मिलनेवाली ब्याज की छूट समय पर नहीं मिलती। बजट में घोषणा के बाद व किसान के कर्ज उठाने के तुरंत बाद बैंकों को ब्याज की रकम मिल जानी चाहिए।
- मानसून आधारित खेती में कर्ज वापसी की शक्ति उत्पादन के अंकेक्षण किये बगैर करने की शक्ति होती है। पटवारी व तहसिलदार के उत्पादन के रपट के आधार पर कर्ज के वापसी का कार्यक्रम चलाना चाहिए।... *क्रमशः अगले अंक में*

महिला किसानी (1)

❑ रमेश भैया

भारत एक कृषि प्रधान देश के रूप में माना जाता रहा है। यहां की खेती में उत्पादन भी अच्छा ही होता है। पुरुष प्रधान समाज होने के कारण खेती में महिला किसान को महत्त्व कम मिल पाया है, जिसके कारण खेती से अपेक्षित परिणाम नहीं मिल पा रहे हैं।

खेती में महिला किसानों की भागीदारी तो है, दुर्भाग्य से वह मजदूर के रूप में ही दर्शायी जाती है। जबकि खेती का 74% कार्य महिलाओं द्वारा ही बुवाई, निराई, कटाई, मड़ाई, अन्न भंडारण आदि के रूप में किया जाता है। 'बोये गेहूं, काटे धान, फिर भी महिला नहीं किसान।'

महिला का खेती के अभिलेखों में भी संयुक्त स्वामित्व या सहखातेदारी हो, इस हेतु उत्तर प्रदेश में 'आरोह' के नाम से महिला किसान हित अधिकार आंदोलन संचालित किया गया है।

महिला किसान : महिला खेती के निर्णय में यदि जुड़ेगी तो क्या खेत में बोया जाये यह तय करते समय यह वर्ष भर में घर की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए फसल का निर्धारण करेगी।

महिला किसान द्वारा खेती में सब्जी उत्पादन के कई लाभ हैं। कम खेती, कम पानी, कम तकनीक, कम पूंजी, कम समय, कम श्रम में सब्जी का उत्पादन संभव है। दूसरा राष्ट्रीय स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति को प्रतदिन औसत 300 ग्राम सब्जी मिलनी चाहिए लेकिन देश में औसत उत्पादन ही 10% है, जिसे पूरा करना भी महिला किसान के माध्यम से ही संभव है। क्योंकि पुरुष किसान कैश क्रॉप का आदी हो चुका है। उसको वही खेती करनी है, जो ज्यादा से ज्यादा पैसा देने वाली है।

बाबा विनोबा ने तीन माताओं का जिक्र किया कि जननी माता, गो माता, धरती माता, तीनों का सम्मान हो, तो समाज सुखी होगा, उस दृष्टि से भी महिला गाय के गोबर से निर्मित खाद का प्रयोग कर धरती माता की सेवा करेगी तो तीनों का जीवन स्वस्थ, सुंदर, सौम्य होगा।

भारत के अनेक प्रदेशों में या कहें संपूर्ण भारत में किसान आत्महत्या हो रही है। यदि महिला किसान अपने परिवार में अपने पति के साथ तय करे कि कितना ऋण खेती हेतु लिया जाये तो उसका निर्णय इस प्रकार का नहीं होगा कि उत्पादन कम होने पर या घाटा होने पर पुरुष किसान आत्महत्या के लिए विवश हो, उसके जुड़ने से आत्महत्या कम होगी। विवाह के बाद जिस प्रकार राशन कार्ड या इस प्रकार के अभिलेखों में पत्नी का नाम जुड़ना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, ठीक उसी प्रकार पत्नी का नाम पति के साथ जुड़ जाये ताकि खेती का विक्रय अकेले पति के निर्णय से न हो सके। बैंक के क्रेडिट कार्ड में महिला का नाम हो ताकि यदि पति बाहर जाता है काम के लिए तो पत्नी उससे अपनी खेती की जरूरत पूरी कर सके। महिलाएं खेती में नये-नये प्रयोगों में भी लगी हैं। पीलीभीत में रमनगरा गांव की महिलाएं अपने खेत में एक समय में कई फसलें ले रही हैं, साथ ही तालाब पर मचान द्वारा लौकी का उत्पादन किया जा रहा है।

(संपादक से हुई वार्ता पर आधारित) ❑

"आज की सबसे बड़ी जरूरत किसानों को उपज का सही मूल्य मिलने की है। बाजार की ताकतों की साजिश है कि पैदावार बाजार में आते ही दाम इतने कम कर दिये जाते हैं कि किसान उन्हें सड़कों पर फेंकने को मजबूर हो जाते हैं। किसान अगर इस शिकंजे से निकल जायें तो उन्हें उनकी उपज का बेहतर मूल्य मिल सकता है। इसके लिए स्थानीय स्तर पर अनाज के भंडारण की व्यवस्था और उसे सही कीमत पर बेचने की सुविधा सुनिश्चित करनी होगी।"

–संतोष भारतीय

"किसानों को लागत का दो गुना मूल्य मिलना चाहिए, लेकिन मोदी ने जो घोषणा की और जो वादा किया उसे ही वे लागू करें। उत्तर प्रदेश में भाजपा सरकार बनने के बाद मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने किसानों की बदहाली दूर करने का वादा किा था। कैबिनेट की पहली बैठक में ही आलू का समर्थन घोषित करने के साथ ही सरकार द्वारा आलू खरीदने का ऐलाना किया था। लेकिन इस घोषणा का जमीनी स्तर पर कोई पालन नहीं हुआ। नतीजतन किसानों ने सैकड़ों बोरे आलू सड़कों पर फेंक दिये। किसानों का कहना है कि आलू से उतना भी पैसा नहीं मिल रहा है, जिससे कोल्ड स्टोरेज में रखने के लिए एक बोरी खरीदी जा सके। यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि एक बोरी बचाने के लिए किसान आलू फेंक दे रहे हैं। सरकार की नीतियों से किसान परेशान हैं।"

–विनोद सिंह

"गन्ना मूल्य में 10 रुपये की बढ़ोत्तरी किसानों के साथ क्रूर मजाक है। ऐसा करके प्रदेश के किसानों को चिढ़ाया गया है। प्रदेश की हालत यह है कि चीनी मिल मालिक गन्ना किसानों का पैसा नहीं दे रहे हैं और सरकार उन्हें राहत पर राहत दिये जा रही है। चीनी मिलों को बिना ब्याज का अरबों का राहत पैकेज मिलता है, यानि गन्ना किसानों के बकाये का जो भी थोड़ा-बहुत भुगतान हो रहा है, वह सरकार ही परोक्ष रूप से दे रही है।" **–शिवजी राय**

महिला किसानी (2)

(प्रो. नूतन मालवीय से सर्वोदय जगत के संपादक श्री अशोक मोती की बातचीत।)

प्रश्न : किसानी में आपकी रुचि कैसे बढ़ी?

उत्तर : जी, मैं बचपन से ही किसानी में रुचि रखती हूं। लेकिन हमारे घर में पिताजी सरकारी कर्मचारी थे। खेती नहीं थी। लेकिन किसान, कृषि संस्कृति का अभ्यास मैं करती रहती थी। जैसे कि मैंने खुद खेती की। किसानों के जीवन का दुख मैंने नजदीक से देखना शुरू किया। मैंने देखा कि खेती में उत्पादन, खर्च तक निकला नहीं। किसानों की तरफ शासन ध्यान देती नहीं, सिर्फ वोटों की राजनीति खेलती है, और भोला किसान उसे ही सच मानकर निराश होकर आत्महत्या का शिकार होता है।

सन् 2000 से मैं प्रथम शरद जोशीजी के वर्धा के प्रचार सभा में गयी थी अपने एक महिला दोस्त के साथ। वर्धा के कृषि उत्पन्न बाजार समिति में होने वाली सभा का नजारा मैं आज तक भूली नहीं। वहां महिलाएं न के बराबर थीं। किसान बहुत संख्या में बैलगाड़ियों से ही सभा स्थान पर आये थे। लोगों में विश्वास था। लेकिन यह किसान नेता फिर राजनीति कर बैठा। 2008 से मैं किसान अधिकार अभियान में किसानों के जनजागरण हेतु गांवों में कार्य करती हूं। म. ज्योतिबा फूले जी का किसान का कोड़ा प्रति क्षण मुझे प्रभावित करता रहा है। शिक्षा न होने के कारण अज्ञानी किसान अर्थशास्त्र समझता नहीं और अज्ञान एवं अंधश्रद्धा तथा परंपरावाद का वाहक है। उसे इससे बाहर आना होगा।

प्रश्न : महिला किसान संगठन क्यों जरूरी है? आपने इसमें कितनी सफलता हासिल की है?

उत्तर : किसान महिलाओं का संगठन बहुत जरूरी है, ऐसा मैं मानती हूं। क्योंकि कृषि की खोज ही हमारी प्रथम गणनायिका ने की है। यहां की स्त्री प्रधान संस्कृति है, जहां महिला ही खेती, बांध बनाना, पशुपालन आदि कार्य करके गणसमाज की प्रमुख थीं। पितृसत्तात्मक पद्धति उठाने के बाद महिलाओं के भौतिक व्यवस्था ने चूल्हा-चौका तक मर्यादित करके देवी बनाया और उसके सारे हक छीनकर उसका शोषण शुरू किया। आज कृषि उत्पादन में 60% का सहभाग महिलाओं का होकर भी उसके नाम पर जमीन हो, इसके लिए सात बार लिखने के बावजूद भी उसे झगड़ना पड़ता है। उसका अस्तित्व सिर्फ पति के गुजर जाने के बाद यानी कि किसान के आत्महत्या के बाद सरकार जो मदद देती है, वह भी बहुत ही अल्प रहती है, उसे देते वक्त उसकी समस्याओं को देखा जाता है। लेकिन उसके सिवा ही वह खेती का सारा कष्टप्रद काम दिन-रात करती है। पति शराब पीता है या खेती के काम को नजरअंदाज करता हो तो भी वह बेचारी सारा परिवार संभालकर किसानी भी करती है, लेकिन कभी वह आर्थिक व्यवस्था की भागीदार नहीं होती। निर्णय लेने में उसकी कहीं भी किसी को जरूरत नहीं लगती।

लेकिन अभी मध्य प्रदेश महिला किसान मंच के तहत महिला इकट्ठा आ रही हैं। पूना में हमने इसका एक अभ्यास शिविर भी लिया था। हमारे यहां महिला किसान अभी भी बड़ी मात्रा में आगे आती नहीं। सेल्फ हेल्फ ग्रुप या मायक्रो फाइनेंस के ग्रुप में किसान महिलाएं आकर बोलने लगी हैं। मगर वे बहन निरुत्साही हैं।

प्रश्न : क्या किसान आंदोलन में पुरुष किसान का सहयोग मिलता है, हां या नहीं? हां तो कैसा?

उत्तर : जी हां, आंदोलन में किसानों का सहयोग मिलता है। जब मुझे डॉ. बाबा आढाव जी के म. फूले समता प्रतिष्ठान, पुणे से डॉ. राम आपटे प्रबोधन पुरस्कार (2007) के तहत 10 हजार रुपये की राशि मिली तो वह सब मैंने किसानों के आंदोलन के लिए दे दी। किसानों के आंदोलन के दबाव के कारण ही निरुत्साही महिला किसान आज किसान आंदोलन में साथ में रहती हैं।

प्रश्न : देश में किसान आंदोलन के संबंध में आपकी क्या योजना है? पुरुष किसान से आपकी क्या अपेक्षा है?

उत्तर : पूरे देश में किसान की आवाज हो। संसद में किसानों की समस्या पर बोलने वाला कोई नहीं है। किसानों के बच्चे होकर भी किसानों के दुख-दर्द पर कोई बोलता नहीं है। किसान जब भी राजनीति में आता है तो जाति-जाति में बंट जाता है। किसान-किसान ही रहना चाहिए। यही उसकी जाति-धर्म सब कुछ है। लेकिन भारत देश की यह दुःखद बात है। पूरे देश के किसानों के आंदोलन में किसानों के बेसिक सवालों का हल करे। जैसे मिनिमम सपोर्ट प्राइज। उत्पादन को आधारभूत मूल्य मिलना चाहिए। क्रॉप इंश्योरेंश पॉलिसी से किसानों को ठगा जाता है। उसे दुरुस्त करें। पैसेवारी या आनेवारी पद्धति, साहूकारी व्यवस्था आदि में सुधार किया जाय। किसानों के बच्चों को शिक्षा, स्वास्थ्य की सुविधा देनी चाहिए। सिर्फ किसान ही नहीं, बल्कि किसानों पर जो-जो निर्भर समाज है, उसे यह सब एग्रिएटिव एक्शन में लाना चाहिए, यह मैं महत्त्वपूर्ण समझती हूं।

पुरुष किसानों ने अपनी पितृसत्तात्मकता, महिलाओं की संपत्ति के अधिकारों से वंचित रखना, उसे उसका स्वातंत्र्य है, यह बात समझ के व्यवहार करना चाहिए। आखिर हम सब मानव हैं। ❑

25 दिसंबर : यीशु-जयंती पर विशेष

परमेश्वर का प्रेम

यीशु-जयंती पर प्रभु यीशु को दण्डवत!

यीशु-जयंती पर मसीह के जीवन और उनकी शिक्षा पर यह आलेख प्रस्तुत है, इस अहिंसा की शिक्षा ने विश्व के अनेक महान नेताओं को प्रभावित किया, जिनमें राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भी एक हैं।

–संपा.

परमेश्वर ने हम सबको बनाया

परमेश्वर केवल एक ही है। वह हमेशा से है और हमेशा तक रहेगा—वह सनातन परमेश्वर है। वह सारी चीजों का बनाने वाला है : चांद-सूरज, फल-फूल, पशु-पक्षी, नदी-नाले और पहाड़, ये सब उसी ने बनाये हैं।

परमेश्वर ने पहले पुरुष और फिर स्त्री को बनाया। उस पुरुष का नाम आदम और स्त्री का नाम हव्वा था। परंतु एक दिन उन्होंने परमेश्वर की बात नहीं मानी और उनके मनों में बुराई आ गयी।

हम सब आदम और हव्वा की ही संतान हैं। आज हम भी उन्हीं की तरह परमेश्वर की बात न मानकर उससे बहुत दूर हो गये हैं। हम झूठ बोलते, चोरी करते और आपस में लड़ाई-झगड़ा करते हैं। हमारे मन लालच, घमंड और ईर्ष्या से भर गये हैं।

अब हमारे बीच में कोई भी धर्मी नहीं है, हा, एक भी नहीं है। हम पाप और बुराई से पूरी तरह भर चुके हैं। इसलिए परमेश्वर का फैसला यह है कि हममें से हरएक को मरना पड़ेगा और इसके बाद हमारा न्याय होगा। अपने किए पापों का दंड हमें निश्चय ही भोगना पड़ेगा।

परमेश्वर का पुत्र, यीशु

भले ही हम परमेश्वर को भूल चुके हैं और हमारे मन बुराइयों से भर गये हैं, फिर भी वह हमें प्यार करता है। इसलिए उसने हमें हमारे पापों और उनसे मिलने वाले भयानक नरक दंड से बचाने के लिए अपने ही एकलौते पुत्र यीशु मसीह को इस दुनिया में भेज दिया।

बहुत साल पले, परमेश्वर ने अपने बहुत से भक्त जनों को भेजा जिन्होंने भविष्य-वाणी की कि मनुष्यों को बचाने के लिए उसका उद्धारकर्ता यीशु आयेगा। जो जो बात उन्होंने कहीं उसकी वे सभी भविष्यवाणियां पूरी हुईं।

आज से लगभग दो हजार साल पहले यीशु ने इस्राएल के बैतलहम नामक गांव में जन्म लिया।

हालांकि यीशु ही परमेश्वर है, फिर भी अपने स्वर्ग के सिंहासन को त्यागकर वह मनुष्य बन गया।

शुभ समाचार

जब यीशु तीस साल का हुआ, तो वह गांवों और शहरों में घूम-घूमकर सब लोगों को स्वर्ग के राज्य के बारे में एक अद्भुत समाचार सुनाने लगा।

''समय आ गया है,'' उसने कहा, ''परमेश्वर का राज्य जल्दी ही आने वाला है। मन फिराओ और इस शुभ समाचार पर विश्वास करो।''

यीशु ने कहा, ''मार्ग, सत्य और जीवन मैं ही हूं। मेरे बिना कोई भी पिता परमेश्वर के पास नहीं पहुंच सकता।''

''जो कोई मुझ पर विश्वास करता है, वह उद्धार पायेगा और स्वर्ग जायेगा।''

जहां कहीं यीशु जाता, लोगों की एक विशाल भीड़ उसकी बात सुनने के लिए वहीं इकट्ठी हो जाती।

आश्चर्य कर्म

यीशु बीमारों को अपने बोल से या फिर उनके ऊपर हाथ रखकर उन्हें अच्छा कर देता था। लोग यह देखकर दंग रह जाते थे। अंधे, बहरे, कोढ़ी और अपंग—सभी उसके पास आते थे और वह उन्हें अच्छा कर देता था।

एक बार एक आदमी ने यीशु को अपने घर बुलाया क्योंकि उसकी लड़की मर गयी थी। यीशु ने उसका हाथ पकड़कर कहा, ''हे बेटी उठ!'' तुरंत ही उसने अपनी आंखें खोल दीं और उठ खड़ी हुई।

एक और बार, जब यीशु और उसके शिष्य एक नाव में बैठे थे कि एक भयानक तूफान आया और उनकी नाव लगभग डूबने पर थी। तब यीशु खड़ा हुआ और उसने आंधी और पानी को आज्ञा दी कि शांत हो जायें। उसी समय आंधी थम गयी और समुद्र शांत हो गया।

इस तरह यीशु ने और भी बहुत से आश्चर्यजनक काम किये ताकि इन कामों को देखकर लोग विश्वास कर सकें कि यीशु परमेश्वर का पुत्र है।

पिलातुस के सामने यीशु

जब धर्म के नेता लोगों ने यीशु की बातें सुनीं और उसके आश्चर्यजनक कामों को देखा तब वे ईर्ष्या और घृणा से भर गये। वे जानते तो थे कि यीशु ही परमेश्वर का पुत्र है। वह स्वर्ग से आया है। फिर भी उन्होंने उसकी बतें नहीं मानीं और अपने पापों से मन फिराने से इनकार कर दिया।

एक दिन उन्होंने इकट्ठे होकर यीशु को मार डालने का निर्णय लिया। उन्होंने उसे गिरफ्तार किया और राज्यपाल पिलातुस के दरबार में ले आये। वहां उन्होंने उस पर झूठा दोष लगाया।

जब पिलातुस ने यीशु से पूछताछ की तो उसे मालूम हुआ कि यीशु निर्दोष है। पिलातुस ने यीशु को छोड़ देना चाहा। परंतु धर्म के नेता लोगों ने आम जनता को भड़काया और जनता चिल्लाने लगी, ''उसे मार डालो! उसे क्रूस पर चढ़ाओ!''

दंगा फसाद होने का खतरा देखकर पिलातुस डर गया और उसने यीशु को मृत्यु दंड की आज्ञा दे दी।

क्रूस

सिपाहियों ने यीशु को मारा-पीटा और कोड़े लगाये और फिर वे उसे शहर के बाहर एक पहाड़ी पर ले गये। वहां उन्होंने उसे दो डाकुओं के बीच क्रूस पर कीलों से जड़ दिया। जब यीशु क्रूस पर लटका हुआ था, उसने उन लोगों के लिए जो उसे सता रहे थे, प्रार्थना की और कहा, ''हे पिता, इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।''

यीशु ने हमसे इतना प्रेम किया कि उसने हमारे दुष्ट मनों को धोकर शुद्ध करने के लिए अपना लहू बहाया और मर गया।

सच में यह परमेश्वर की योजना थी कि यीशु हमारे स्थान पर मरे और हमारे सब पापों के भयानक दंड का मूल्य चुकाये।

यह परमेश्वर का वायदा है कि जो कोई अपने पापों को मान लेगा और यीशु को अपना उद्धारकर्ता स्वीकार करेगा तो उसे क्षमा कर दिया जायेगा और वह स्वर्ग में रहेगा।

यीशु जी उठा

जब यीशु मर गया तो उसकी लाश को कब्र में दफना दिया गया। लेकिन तीसरे दिन वह फिर से जी उठा। यीशु ने हमें अनंत जीवन देने के लिए मृत्यु पर विजय पायी।

उसी दिन, शाम के समय जब उसके शिष्य एक कमरे में इकट्ठे थे। अचानक यीशु प्रकट हुआ और उनके बीच में आ खड़ा हुआ। शिष्यों ने भयभीत होकर कहा, ''यह तो भूत है!''

परंतु यीशु ने कहा, ''तुम इतने डरे हुए क्यों हो? देखो! सचमुच यह मैं ही हूं। तुम स्वयं मुझे छूकर देखो। भूत का ऐसा शरीर नहीं होता'' और उसने अपने हाथों और पैरों को दिखाया जहां कीलें ठोंकी गयी थीं। शिष्यों ने देखा कि यह तो सचमुच यीशु ही है तो वे बहुत आनंदित हुए।

यीशु का स्वर्ग में उठाया जाना

मृतकों में से जी उठने के बाद यीशु इस पृथ्वी पर चालीस दिन रहा। वह अपने शिष्यों से कई बार मिला और उन्होंने एक साथ बातें कीं और भोजन भी किया। उसने उन्हें वे सब बातें बतायीं जो संसार के अंत में होनी हैं और उस नये संसार की भी, जिसे परमेश्वर बनाने वाला है।

यीशु ने अपने शिष्यों को आज्ञा दी, ''सारे संसार में जाओ और सबको मेरे बारे में बताओ। जो कोई मुझपर विश्वास करेगा, वह उद्धार पायेगा और स्वर्ग जायेगा। परंतु जो विश्वास नहीं करेगा, उसका न्याय होगा और वह नरक में डाल दिया जायेगा।''

मृतकों में से जी उठने के चालीसवें दिन, यीशु ने अपने शिष्यों को बुलाया और वे एक साथ एक पहाड़ पर गये। वहां उनकी आंखों के सामने यीशु स्वर्ग पर उठा लिया गया और बादलों ने उसे छिपा लिया।

न्याय का दिन

यीशु आज स्वर्ग में है और जीवित है। परंतु उसने वायदा किया है कि वह जल्दी वापस आयेगा। वह राजा बनकर आयेगा और उसके साथ बहुत सारे स्वर्गदूत भी आयेंगे। पृथ्वी के सब लोग उसे बादलों पर आते देखेंगे।

उस महान और भयानक दिन, हम सब यीशु के न्याय सिंहासन के सामने खड़े होंगे। जो काम हमने इस पृथ्वी पर रहकर किये हैं उनमें से हर एक का लेखा हमें उसको देना पड़ेगा।

जिन लोगों ने यीशु पर विश्वास करने से इनकार किया है, उनके लिए वह दिन कितना भयानक दिन होगा। वे अपने किये पापों का दंड पाकर उस आग की झील में डाले जायेंगे जो हमेशा जलती रहती है और कभी नहीं बुझती। यही नरक है—दूसरी मृत्यु है।

परंतु जिन लोगों ने यीशु पर विश्वास किया है और जिनके पाप क्षमा किये गये हैं, उनके लिए वह दिन कितने आनंद का दिन होगा, क्योंकि वे हमेशा ही परमेश्वर के साथ स्वर्ग में रहेंगे! वहां उनके लिए कोई बीमारी, दुःख, कष्ट या मृत्यु नहीं होगी। वहां केवल खुशी और हमेशा का आनंद ही आनंद होगा! ❑

साथी पंचदेव

साथी पंचदेव के बारे में लिखने बैठा हूं, आज सुबह ही पंचदेव के न रहने की खबर मिली, आज सुबह से ही उदास हूं। अभी प्रियदर्शी से बात हुई, पंचदेव का अंतिम संस्कार शुरू है।

पंचदेव के बारे में लिखने तो बैठा हूं, लेकिन उसके बारे में लिखना यानी उसके परिवारजनों के बारे में भी लिखना होगा। पर, मुझे इतना ही पता है कि वह अविवाहित था। इसके अलावा उसके मां-बाप, गांव, उसकी पढ़ाई-लिखाई, इस बारे में मुझे कुछ भी पता नहीं है। जबकि उससे बीते चालीस सालों से दोस्ती है। मैं मानता हूं कि यह अजीब बात है, जिसके साथ हम उठते-बैठते हैं, उसके बारे में हम कुछ भी नहीं जानते, इसलिए उसके निजी कौटुम्बिक जीवन का हिस्सा छोड़कर आगे बढ़ना होगा।

पंचदेव को शब्दों में पकड़ने की कोशिश कर रहा हूं, लेकिन बड़ा कठिन हो रहा है पकड़ना! पंचदेव की उग्रता उसकी अपनी पहचान थी, मुंहफट बातें करना उसका स्वभाव था। किसी बैठक या सभा में आकर उसने तीखी जबान में आलोचना न की हो, ऐसा हो ही नहीं सकता। पूना में मानवीय एकता सम्मेलन हुआ। सम्मेलन का स्वरूप हमेशा के सम्मेलन से थोड़ा भिन्न था। उपस्थितों को बोलने का मौका शायद कम मिल रहा था। पंचदेव को बोलने के लिए कहा गया, तो उखड़ा सा वह माईक पर आया और धन्यवाद कह कर बैठ गया। लोग हक्के-बक्के होकर देखते रह गये। सम्मेलन का पहला दिन समाप्त हुआ। रात को गपशप में वह कौंधता रहा। सम्मेलन के स्वरूप पर तीखी टिप्पणी करता रहा। उपस्थित साथियों को पंचदेव के स्वभाव का परिचय था। साथियों ने कभी बुरा नहीं माना।

एक दफे एक साथी ने बात-बात में टिप्पणी की थी, ''हम तुम्हें ढो रहे हैं।'' लेकिन इस टिप्पणी में पंचदेव के प्रति प्रेम ही रहा है। जात-पात का वह घोर विरोधी था।

कर्मकांड और देवी-देवताओं का वह घोर निंदक था। यह निन्दा, यह विरोध बहुत ही तीखा व उग्र रहा करता था। कभी-कभी गाली-गलौच तक बातें निकल जाती। उसके स्वभाव का वह तीखापन उसके अपने जीवन की उग्र तपस्या से आया था। वह अविवाहित था, संस्था में रहता था, कार्यकर्ता साथ थे, वही उसका परिवार था। वैरागी था।

धार्मिक कट्टरता के खिलाफ वह लगातार मधुबनी इलाके में कार्यक्रम लेते रहा। उस इलाके में मंदिर को लेकर विवाद बना हुआ है। मुस्लिम इलाके में मंदिर है। हिन्दू विशिष्ट दिन वहां पूजा करते हैं। मुसलमान विरोध कर रहे हैं। इस समस्या को लेकर वह हमेशा प्रयत्नशील रहा। जहां-जहां मौका मिले, वह खुले मंच से विस्तार से इस समस्या को कहता। जितना वो हिन्दू कट्टरता के खिलाफ बोलता उतना ही मुस्लिम कट्टरता के खिलाफ भी! उसे भय नहीं लगता। विचारों प्रति प्रतिबद्ध था।

एक दफे घर पर आया था। मां से कहने लगा, ''आप मधुबनी आइये। वहां के आम मशहूर हैं।'' मां ने पूछा, ''क्या तुम्हारे आम के बगीचे हैं?'' उसने कहा, ''सभी बगीचे मेरे ही हैं। आप आइये तो। मां मेरी ओर देखने लगी। मैं हंसता रहा।

मैंने एक दफे उससे कहा, तुम अंग्रेजी हटाओ की बात करते हो और तुम्हारी संस्था का नाम अंग्रेजी में रखा है ''लोहिया करपुरी इंस्टीट्यूट'' यह कैसे? इस मजाक का कभी उसने बुरा नहीं माना। एक दफे दिल्ली में मिला, बहुत ठंड थी। पैर में केवल चप्पल थी। कहने लगा पांव बहुत दर्द कर रहे हैं। मैंने कहा, 'तुम जूते पहनो, ठंड पांव को मार रही है। उसके कारण पैर दर्द कर रहे हैं।''

इलाहाबाद में उसके अलाके के मजदूर बंद थे। केस लेकर वह इलाहाबाद में डटा रहा। और कोर्ट से उसने उन मजदूरों को रिहा किया। गरीबों पर होने वाले अन्याय के खिलाफ भिड़ना उसकी शैली थी।

बीच-बीच में अचानक उसका फोन आता। कैसे हो? क्या चल रहा है? आदि बातें पूछता रहता था। गुजरात के चुनाव पर भाष्य करता, हाल ही में सूरत से लौटा था। उस अनुभव पर अपना आकलन सुनाता। अपनी बीमारी के बारे में बताता।

खादी का कुर्ता-पाजामा, बढ़ी हुई दाढ़ी, घुंघराले बाल, नाटा-सा कद...पंचदेव की मूर्ति आंखों के सामने आ रही है। पंचदेव जैसे उग्र साथी रहने से ही संगठन सही दिशा में चलता है।

पंचदेव ने जो झंडा अपने कंधे पर लिया था, वह नीचे न गिरने देना यह उसके प्रति सही श्रद्धांजलि होगी।

–जयंत दिवाण

बा-बापू : 150वीं जयंती पर विशेष

'बा'

घरे-बहारे

❑ **गिरिराज किशोर**

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है—पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं। **–संपा.**

मैं तुम्हारे साथ हूं...

1903 की जनवरी में एक घटना घटी। हरिलाल 14 साल का हो रहा था। अपने मोटा बापू से उसका गहरा जुड़ाव था। मोटा बापू लक्ष्मीदास ने उसका रिश्ता गांधी परिवार के विश्वसनीय वोरा परिवार की 11 वर्षीय बेटी गुलाब से तय कर दिया था। हरिदास वोरा राजकोट के वरिष्ठ वकील थे और मोहनदास के अच्छे मित्र थे। मोध वैश्य भी थे। कस्तूरबा व मोहनदास के बाल विवाह के विरोध को लक्ष्मीदास ने हल्का करके लिया था। मोहनदास को पता चला तो उन्होंने रिश्ते का जबरदस्त विरोध किया। जब उनको आश्वस्त किया गया कि उन दोनों बच्चों का विवाह कई साल बाद सम्पन्न होगा तो उन्होंने बड़े बेमन से सहमति दे दी।

पतझड़ आरंभ हो गया था। सूख जाने के कारण रंग बदलकर इधर-उधर बिखरे पत्ते, कस्तूरबा को अंदर से बेचैन कर देते थे। भले ही वह ऊपर से कितना शांत लगती हो। पत्नी और मां के रूप में असहायता की एक चिंगारी निरंतर धुंधुआती रहती थी। धुएं की अल्प-पारदर्शिता...।

साल पूरा होने पर लौटने की जगह मोहनदास का संदेश आया कि कस्तूरबा बच्चों के साथ जितनी जल्दी हो सके दक्षिण अफ्रीका आ जाये। इस बात का कहीं उल्लेख नहीं था कि उनका कब लौटना होगा। वह अपने पति के जीवन में अपनी भूमिका निभाना चाहती थी। लेकिन हरिलाल को राजकोट में छोड़कर जाने की बात से वह अंदर ही अंदर ही आशंकित और डरी हुई थी। हरिलाल अपनी बा के साथ डरबन जाने के लिए तैयार नहीं था। राजकोट में पढ़ाई को लेकर सब लोग हरि की प्रशंसा करते थे। हरिलाल कुशाग्र बुद्धि था। जब लोग तारीफ करते थे तो कस्तूरबा को सुख भी मिलता था और गर्व भी होता था। बा मानती थी कि हरिलाल का पढ़ने के प्रति आग्रही होना उसका सकारात्मक पक्ष था।

कस्तूरबा मन ही मन अनेक आशंकाओं से घिरती जा रही थी। पिछली बार की समुद्री यात्रा के मुकाबले इस बार की समुद्री यात्रा कई तरह की आशंकाएं मन में उठ रही थी। इस बार बच्चों के साथ अकेले जाना था। हजारों मील की यात्रा, पिछला अनुभव, इन सब कारणों से वह समझ नहीं पा रही थी, उसके परिवार के भाग्य में क्या है? उधर मोहनदास के पत्रों से पता चलता था कि दक्षिण अफ्रीका तेजी से बदल रहा है। वह बदलाव कैसा है? उसे लगता था जैसे वह पहली बार किसी बीहड़ में जा रही हो। वैसे भी इस बार डरबन में घर न लेकर मोहनदास ने ट्रांसवाल में घर लिया था। वे वहीं प्रेक्टिस कर रहे थे। कस्तूरबा ने ट्रांसवाल का नाम भर सुना था। पूरे परिवार को जोहान्सबर्ग में रहना था। वहां क्रियॉन भाषा बोली जाती थी जो अंग्रेजी से भी अलग थी। वहां जाकर उसे खान-पान, रहन-सहन, घर और बच्चों की पढ़ाई को, मोहनदास की नई सोच के हिसाब से संवारना पड़ेगा। परिवर्तन उसके जीवन का स्थाई भाव हो गया था। वह इन चुनौती का सामना करेगी, इस सोच ने उसे बल दिया था। बदलावों से जूझती आयी थी, उनके साथ जीती आयी थी। डरेगी नहीं। पहले भी बदलावों के साथ जिया है, आगे भी जियेगी।

उसका द्वंद्व एक और था। वह अपनी उस स्वतंत्रता की बलि नहीं देना चाहती थी जो उसने पहली बार सांताक्रूज में रहते हुए अनुभव किया था। महिलाएं उस जमाने में, शायद आज भी, इस तरह की अप्रतिबंधित स्वतंत्रता की कठिनाइयों से परिचित नहीं हो पातीं। काशीबेन और कस्तूरबा ने बड़े मनोयोग से यह सोचकर घर संवारा था कि साल भर बाद जब मोहनदास आयेंगे तो परिवर्तन को देखकर खुश होंगे। काशीबेन की कार्यकुशलता पर कस्तूरबा को पूरा विश्वास हो गया था। लेकिन जैसे-जैसे प्रस्थान का समय निकट आया कस्तूरबा का स्वायत्त-सुख सिमटने लगा। सांताक्रूज के बंगले का मोह व्यथित करने लगा। इस बात का भी दुःख था कि काशीबेन का संग साथ छूट जायेगा। पता नहीं फिर कब मिलना हो। अलग होते समय व्यक्ति-मोह ही नहीं सालता, स्थान से जुड़ाव भी कहीं न कहीं आहत करता है। रिश्तों के बिखरने की पीड़ा भी कई बार असह्य होती है। खासतौर से जब स्वनिर्मित हों।

जब से मोहनदास दोबारा दक्षिण अफ्रीका लौटे थे, उन्होंने वहां बहुत से अनापेक्षित परिवर्तन देखे थे। बोअरों की हार के बाद भारतीय प्रजा को आशा थी, उन्होंने जो भारतीयों पर जुल्म किये थे, अंग्रेजों की जीत के बाद समाप्त हो जायेंगे। लेकिन भारतीयों के प्रति अपमान और उत्पीड़न का युग खत्म नहीं हुआ था। भले ही उस लड़ाई में भारतीयों ने अंग्रेजी सेना की कितनी भी सेवा की हो। बोअर युद्ध के समय अंग्रेजों ने घोषणा की थी कि अंग्रेजों के बोअर-युद्ध का एक कारण भारतीयों के साथ किया जाने वाला दुर्व्यवहार भी है। 1903 तक आते-आते हालात बद से बदतर हो गये थे।

मोहनदास को जब भारतीयों की दुर्दशा का भान हुआ तो वे डरबन के नेटाल इंडियन कांग्रेस के साथियों को साथ लेकर अविलंब ब्रिटिश सरकार के उपनिवेश सचिव चेंबरलेन से मिलने गये। चेंबरलेन वहीं कैंप कर रहे थे। चेंबरलेन के बारे में लोगों का मत था कि वे भारतीयों के हमदर्द हैं। चेंबरलेन ने मोहनदास का पूरे आदर के साथ स्वागत किया। लेकिन जब वे ब्रिटिश कानून का सम्मान करने वाले भारतीयों का पक्ष सुन रहे थे, अपनी व्यस्तता के नाम पर चेंबरलेन ने मोहनदास और साथियों को चलता करने में एक क्षण नहीं लगाया था। केवल इतना ही कहा, 'मि. गांधी, हम उपनिवेशों के मामले में हस्तक्षेप नहीं करते। वैसे मैं जो कर सकता हूं, करूंगा। मेरी व्यक्तिगत सलाह है कि अगर तुम्हें यूरोपियन्स के साथ रहना है तो उनका विश्वास जीतने का प्रयत्न करो।' यह कहकर वे युद्ध प्रभावित ट्रांसवाल का निरीक्षण करने निकल गये।

चेंबरलेन के इस व्यवहार से भारतीयों के विश्वास को बहुत धक्का लगा। उन्होंने मोहनदास को घेरा, 'आपने हमसे कहा था अगर हम लोगों ने बोअरों के साथ लड़ाई में अंग्रेजों का साथ दिया तो वे हमारी समस्याओं पर सहानुभूति दिखायेंगे।' गांधी को मानना पड़ा कि उन्होंने ब्रिटिश नौकरशाही को समझने में गलती की थी।

....क्रमशः अगले अंक में

और अन्ततः

गुजरात की जागृति

गांधी और सरदार पटेल की जन्मभूमि है गुजरात। जब गुजरात की धरती ने अंगड़ाई ली, पूरे देश ने अंगड़ाई ले ली, यही इतिहास है। बदलाव समाज का हो, व्यवस्था का हो या राज्य सत्ता का, गुजरात इन बदलावों का अगुवा रहा है।

गांधी जब युवा थे दक्षिण अफ्रीका में एक अदभुत क्रांति कर दी। तिलक के जाने से जो अंधेरा हुआ, गांधी के आने से उगते हुए सूरज की तरह पूरा भारत प्रकाशमान हो गया। दक्षिण अफ्रीका से भारत आते ही गांधी ने तीन बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य किये—1. गिरमिटिया या बंधुआ मजदूरों को गोरे जमींदारों द्वारा भारत से दक्षिण अफ्रीका ले जाने की प्रथा समाप्त करवाई। 2. गुजरात के विरमगाम में अत्यन्त बदनाम और तिरस्कृत जकात चौकी को बंद करवाया। 3. चम्पारण के किसानों पर गोरे नीलहों द्वारा होने वाले अत्याचारों से किसानों को मुक्ति दिलवायी। फिर खिलाफत आंदोलन को समर्थन देकर गांधी ने एक तरफ साम्प्रदायिकता की अस्वाभाविक प्रक्रिया पर प्रहार किया दूसरी ओर उन्होंने 1921 में ही असहयोग आंदोलन के द्वारा भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव को जड़ से हिला दिया। गांधी यहीं नहीं रुके। सफल सत्याग्रहों की झड़ी लगा दी, जिनमें वारडोली, खेड़ा, वायकोम और नागपुर के झंडा सत्याग्रह और बाद में नमक सत्याग्रह आदि प्रमुख हैं। उन्होंने न केवल अपने जीवन संघर्ष से अंग्रेजों से भारत को आजाद कराया बल्कि भारतवासियों को श्रेष्ठ जीवनशैली की शिक्षा भी साथ-साथ दी। किन्तु दुर्भाग्यवश गांधी अपनी सफलताओं के कारण जिन कट्टर हिन्दुत्ववादियों की आंखों की किरकिरी बन गये थे, ने गांधी की हत्या कर दी।

काफी लंबे समय के बाद व्यवस्था के खिलाफ गुजरात की धरती और युवाशक्ति ने 1974 में एक गहरी अंगड़ाई ली। छात्रनेताओं ने जेपी की अपील 'यूथ फॉर डेमोक्रसी' से प्रभावित होकर जेपी को अहमदाबाद बुलाया। जहां 13 फरवरी, 1974 को व्यापारी महामंडल का रचनात्मक कार्यकर्ताओं का सम्मेलन और 14 फरवरी, 1974 को गुजरात यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियों को जेपी ने संबोधित किया। गुजरात से निकली यह चिंगारी बिहार होते पूरे देश में एक दावानल बनकर फैल गयी, परिणामस्वरूप कांग्रेस की केन्द्र सरकार आजादी के बाद पहली बार सत्ता से बाहर हो गयी।

व्यवस्था के खिलाफ आज एक बार फिर गुजरात विधान सभा के चुनाव में आवाजें उठी हैं। युवाशक्ति गोलबंद हुई है, जिनमें दलित युवा नेता जिग्णेश मेवाणी, ओबीसी युवा नेता अल्पेश ठाकरे और पाटीदार युवा नेता हार्दिक पटेल प्रमुख हैं। ऐसे में भाजपा के लिए यह लड़ाई जीवन और मरण की लड़ाई बन चुकी है। यहां वह पिछले 22 वर्षों से सत्ता में बनी हुई है। वह भी 'गुजरात के विकास मॉडल के नाम पर'। किन्तु भाजपा चुनाव के अपने प्रचार में विकास के मुद्दे पर एकदम रक्षात्मक नजर आ रही है। देश की जनता से किये गये 'अच्छे दिन' की वायदे पर कोई बात नहीं करती। वह न तो किसानों की आत्महत्या पर न दलित व अल्पसंख्यक अत्याचार पर और न ही नोटबंदी और जीएसटी पर बात कर रही है। वह हिन्दू राष्ट्रवाद व अल्पसंख्यक विरोध से आगे बढ़ी नहीं पाती।

कुछ भी हो गुजरात की जनता लगता है जाग उठी है और गुजरात तथा पूरे देश में जो परिस्थितियां बनी हैं, उससे लोगों का आक्रोश भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट होना शुरू हो गया है। गुजरात में जो जागृति आयी है वह एक परिवर्तन का संकेत है। चुनाव में जीत हार चाहे किसी की हो किन्तु गुजरात की कुव्यवस्था और भाजपा के हिन्दुत्ववादी पहल के खिलाफ जो स्वर उभरे हैं वे पुनः मील के पत्थर साबित हो सकते हैं। **–अशोक मोती**

कविताएं

प्रेमशंकर रघुवंशी की कविताएं

पृथ्वी हो कविता

तुम, पूरी पृथ्वी हो कविता
भीतर से धधकती
ऊपर से ठोस उर्वरा

जब कुछ भी नहीं रहेगा
तब भी एक हरियाली रहेगी
कहीं-न-कहीं किसी कोने में
पीसते सपने होंगे तुम्हारी पलकों में
विस्फोटों से बनी
राख की ढेरियों के नीचे
तब तुम्हारा हल्का-सा चुम्बन
नये सृजन को काफी होगा धरा!
तुम, पूरी पृथ्वी हो कविता
भीतर से धधकती
ऊपर से ठोस उर्वरा!!

आजाद रोशनी

धूप तुम आयी तो मेरी देह
पसीने से महक उठी
रोम-रोम से छलक पड़ा गुनगुना प्यार
धीरे-धीरे उतरो–
उधर कच्चे मकानों से फैले खेतों तक
ताकि लोग गांव छोड़कर
रोटी के लिए
महानगरों की तरफ न दौड़ें
इन्कलाब की तरह उतरो
मुरझाये चेहरों पर
जिनमें अकाल की झुर्रियां पड़ी हैं
और जो पानी की तलाश में
भाप हुए जा रहे हैं
उतरो वहां जहां
मजदूरों के इरादे बिखरने लगे हैं
और किसानों का कर्ज भरा जीवन
गाय-बैल, खेत-खलिहान की
नीलामी पर चढ़ा है

खंजर की तरह धंसो
धुएं के बादलों की छाती में
जिनकी वजह से मैदान आसमान के
रंग ढंग ही नहीं देख पाते
धूप, उतरो तमाम जाले छांटती
पंख खोले सब तरफ
तुम, पृथ्वी की आंखों में
आजाद रोशनी हो!

किसान की चिन्ता

चिन्ता है बैलों के चारे की
भैंस की खली की चिन्ता है मुझे
पाड़ा पाड़ियों को पालने की चिन्ता है
चिन्ता है झबरा के अयाल खयाल की
मेड़ की दूधई कांधी काटने की
चिन्ता है
चिन्ता है बीड़ के हरे घास की
पकी फसल के बीच अनाज से ज्यादा
भूसे की चिन्ता है
अपनी भूख से ज्यादा
गायों के कौल की चिन्ता है
मुझे सयानी होती
बेटी से ज्यादा चिन्ता है
केड़ा-केड़ियों के सानी की
चिन्ता है अपनी प्यास से ज्यादा
मवेशियों के पानी की
चिन्ता है अपनापन न खोने की
मुझे चिन्ता है अपना होने की!!

मखौल उड़ाते लोगों से

पसीने का तुम्हें
जितना भी मखौल उड़ाना हो
उड़ा लो
लेकिन जिस वक्त
कविता तुम्हें देखना शुरू करेगी
वह तुम्हारी मौत तक
शब्दों की लंबी कतार खड़ी कर देगी
जिसमें यदि चीटियां भी
दाखिल हुईं तो
वे भी तुम्हारी हकीकतों का
बयान करेंगी
जितनी देर तुम फक-फक
कर रहे होगे
मैं एक कविता पूरी
कर चुका होऊंगा
माएं बच्चों को दूध
पिला चुकी होंगी
फूल खिल-खिल
खुशबू बिखेर चुके होंगे
और पकी फसल के बीच खड़े
किसान की दुआएं धरती के लिए
तृप्ति की धूप सकेल रही होंगी
तुम्हें जितना भी मखौल उड़ाना हो
उड़ा लो, लेकिन तुम
अपनी ही रोशनी से गाफिल
एक बंद सूरजमुखी तो
अब भी हो। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। प्रधान संपादक : बिमल कुमार / संपादक : अशोक मोती।